ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क ४७

और खाई बढ़ती गई

[आठ रेडियो नाटक]

श्री भारतभूषण अग्रवाल
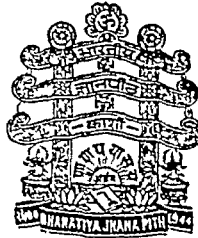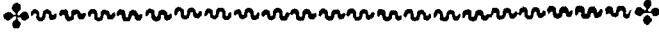
भारतीय ज्ञानपीठ काशी
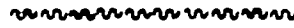
आकाशवाणीके कलाकारोंको

निवेदन

प्रस्तुत सग्रहमे मेरे आठ रेडियो नाटक एकत्र है जो समय-समयपर आकाशवाणीसे प्रसारित होते रहे हैं । नाटकोके चुनावमे दो बातोपर विशेष दृष्टि रक्खी गई है । एक कि कमसे कम अवधिके नाटकसे लेकर अधिकसे अधिक अवधि तक का नाटक सकलित हो । दो कि प्राय. सभी प्रकारके नाटक सम्मिलित हो जाये, यथा: ऐतिहासिक (महाभारतकी साँझ), काल्पनिक (अजन्ताकी गूँज), सामाजिक (और खाई बढती गई, युग-युग या पाँच मिनट एव परछाई) व्यग्यपूर्ण (दृष्टिदोष, गीतकी खोज) और शुद्ध विनोदपूर्ण (इन्ट्रोडक्शन नाइट) ।

१८बी, टैगोर टाउन
प्रयाग
अप्रैल, १९५६

——भारतभूषण अग्रवाल

अनुक्रम

महाभारतकी साँझ

पात्र :

धृतराष्ट्र

संजय

भीम

युधिष्ठिर

दुर्योधन

अवधि
३० मिनट

महाभारतकी साँझ

[सारंगी पर आलाप उठता है]

धृतराष्ट्र—[ठंडी साँस लेकर] कह नही सकता सजय ! किसके पापोका यह परिणाम है, किसकी भूल थी जिसका भीषण विपफल हमे मिला ! ओह ! क्या पुत्र-स्नेह अपराध है, पाप है ? क्या मैने कभी भी. कभी भी .

संजय—शान्त हो महाराज ! जो हो चुका उसपर शोक करना व्यर्थ है ।

धृतराष्ट्र—[साँस लेकर] फिर क्या हुआ सजय ?

संजय—आत्मरक्षाका और कोई उपाय न देखकर महाबली सुयोधन द्वैतवनके सरोवरमे घुस गये, और उसके जल-स्तम्भमे छिपकर बैठे रहे । पर न जाने कैसे पाण्डवोको इसकी सूचना मिल गयी और वे तत्काल रथपर चढकर वहाँ पहुँच गये

[रथकी गड़गडाहट]

भीम—लीजिए महाराज ! यही है द्वैतवनका सरोवर । वे अहेरी कहते थे कि उन्होने दुर्योधनको इसी जलमे छुपते हुए देखा ।

युधिष्ठिर—आओ, हम लोग उसे बाहर निकालनेकी चेष्टा करे ।

[जलकी कलकल ध्वनि]

युधिष्ठिर—[पुकार कर] ओ पापी ! अरे ओ कपटी, दुरात्मा दुर्योधन ! क्या स्त्रियोकी भाँति वहाँ जलमे छुपा बैठा है ! बाहर निकल आ ! देख, तेरा काल तुझे ललकार रहा है !

भीम—कोई उत्तर नही । [ज़ोर से] दुर्योधन ! दुर्योधन ! अरे, अपने सारे सहयोगियोकी हत्याका कलक अपने माथेपर लगाकर तू कायरोको भाँति अपने प्राण बचाता फिरता है ! तुझे लज्जा नही आती ?

युधिष्ठिर—लज्जा ! उस पापीको लज्जा ! भीमसेन ! ऐसी अनहोनी बातकी तुमने कल्पना भी कैसे की ? जो अपने सगे-सम्बन्धियोको गाजर-मलीकी भाँति कटवा सकता है, जो अपने भाइयोको जीवित जलवा देनेमें भी नही हिचकता, जो अपनी भाभीको भरी सभामे अपमानित करानेमे आनन्द ले सकता है, उसका लज्जासे क्या परिचय ! **[सव्यंग्य हँसी]**

दुर्योधन—**[दूर जलमें से]** हँस लो, हँस लो दुष्टो ! जितना जी चाहे हँस लो, पर यह न भूलना कि मै अभी जीवित हूँ, मेरी भुजाओका बल अभी नष्ट नही हुआ है ।

युधिष्ठिर—**[जोरसे]** अरे नीच ! अब भी तेरा गर्व चूर नही हुआ ! यदि बल है तो फिर आ न बाहर, और हमे पराजित करके राज्य प्राप्त कर । वहाँ बैठा-बैठा क्या वीरता बघारता है ! तू क्या समझता है हम तेरी थोथी बातोसे डर जायेंगे ?

दुर्योधन—अपने स्वार्थके लिए अपने गुरुजनो, बन्धु-बान्धवोका निर्ममतासे वध करनेवाले महात्मा पाडवोके रक्तकी प्यास अभी बुझी नही है, यह मै जानता हूँ । पर युधिष्ठिर ! सुयोधन कायर नही है, वह प्राण रहते तुम्हारी सत्ता स्वीकार नही कर सकता ।

भीम—तो फिर आ न बाहर और दिखा अपना पराक्रम ! जिस कालाग्नि को तूने वर्षो घृत देकर उभाडा है उसकी लपटोमे तेरे साथी तो स्वाहा हो गये । उसके घेरेसे अब तू क्यो बचना चाहता है ? अच्छी तरह समझ ले, ये तेरी आहुति लिये बिना शान्त न होगी ।

दुर्योधन—जानता हूँ युधिष्ठिर ! भली भाँति जानता हूँ । किन्तु सोच लो, मै थककर चूर हो गया हूँ ! मेरी सारी सेना तितर-बितर हो गयी है, मेरा कवच फट गया है, मेरे शस्त्रास्त्र चुक गये हैं । मुझे समय दो युधिष्ठिर, क्या भूल गये, मैंने तुम्हे तेरह वर्षका समय दिया था ?

युधिष्ठिर—[हँसकर] तेरह वर्षका समय दिया था ? दुर्योधन ! तुमने तो हमे वनवास दिया था, यह सोचकर कि तेरह वर्ष वनमें रहकर हमारा उत्साह ठडा पड जायेगा, हमारी शक्ति क्षीण हो जायगी, हमारे सहायक बिखर जायँगे, और तुम अनायास हमपर विजय पा सकोगे। इतनी आत्म-प्रवचना न करो।

दुर्योधन—युधिष्ठिर, तुम तो धर्मराज कहलाते हो। तुम्हारा दम्भ है कि तुम अधर्म नही करते। फिर तुम्हारे रहते, तुम्हारी आँखोके आगे ऐसा अधर्म हो, सोचो तो !

भीम—[हँसकर] अच्छा, तो अब तुझे धर्मका स्मरण हुआ। सच है, कायर और पराजित ही अन्तमे धर्मकी शरण लेते है।

युधिष्ठिर—अरे पामर ! तेरा धर्म तब कहाँ चला गया था जब एक निहत्थे बालकको सात-सात महारथियोने मिलकर मारा था, जब आधा राज्य तो दूर, सुईकी नोक बराबर भी भूमि देना तुझे अनुचित लगा था। अपने अधर्मसे इस पुण्यलोक भारत भूमिमे द्वेषकी ज्वाला धधकाकर अब तू धर्मकी दुहाई देता है। धिक्कार है तेरे ज्ञानको ! धिक्कार है तेरी वीरताको ! !

दुर्योधन—एक निहत्थे, थके हुए व्यक्तिको घेरकर वीरताका उपदेश देना सहज है युधिष्ठिर ! मुझे खेद है, मैं उसके लिए तुम्हारी प्रशसा नही कर सकता; पर मै सच कहता हूँ तुमसे, इस नर-हत्याकाडसे मुझे विरक्ति हो गयी है। इस रक्त-रजित सिंहासन पर बैठकर राज्य करनेकी मेरी कोई इच्छा नही है। तुम निश्चिन्त मनसे जाओ और राज्य भोगो। सुयोधन तो वनमे जाकर भगवद्भक्तिमे दिन बिताएगा।

भीम—व्यर्थ है दुर्योधन ! तेरी यह सारी कूटनीति व्यर्थ है। अपने पापोके परिणामसे अब तू किसी भी प्रकार नही बच सकता। बाहर निकल कर युद्ध कर, बस यही एक मार्ग है।

दुर्योधन—अप्रस्तुतको मारनेसे यदि तुम्हे सतोप मिलता हो तो लो, मै बाहर आता हूँ। [**जलसे बाहर निकलकर पास आने तककी आवाज**] पर मै पूछता हूँ युधिष्ठिर ! मेरे प्राणोका नाशकर तुम्हे क्या मिल जायगा ?

युधिष्ठिर—अरे पापी ! यदि प्राणोका इतना ही मोह था तो फिर यह महाभारत क्यो मचाया ! न्यायको ठोकर मारकर अन्यायका पथ क्यो ग्रहण किया ?

दुर्योधन—युधिष्ठिर ! मैने जो कुछ किया अपनी रक्षाके लिए ! मै जीना चाहता था, शान्ति और मेलसे रहना चाहता था। मै नही जानता था कि तुम्हारे रहते मेरी यह कामना, यह सामान्य-सी इच्छा भी पूरी न हो सकेगी।

भीम—पाखडी ! तुझे झूठ वोलते लज्जा नही आती ?

दुर्योधन—ले लो राक्षसो ! यदि तुम्हारी हिंसा इसीसे तृप्त होती हो तो ले लो, मेरे प्राण भी ले लो। जब मै जीवन भर प्रयास करके भी अपनी एक भी घडी शान्तिसे न विता सका, जब मै अपनी एक भी कामनाको फलते न देख सका, तो अब इन प्राणोको रखकर भी क्या करूँगा। लो, उठाओ शस्त्र और उडा दो मेरा शीश। अब देखते क्या हो ? मै निहत्था तुम्हारे सम्मुख खडा हूँ। ऐसा सुअवसर कब मिलेगा, मेरे जीवनशत्रुओ !

युधिष्ठिर—पहले वीरताका दम्भ और अन्तमे करुणाकी भीख !—कायरो का यही नियम है। परन्तु दुर्योधन ! कान खोलकर सुन लो। हम तुम्हे दया करके छोडेगे भी नही, और तुम्हारी भाँति अधर्मसे हत्या कर बधिक भी न कहलायेगे। हम तुम्हे कवच और अस्त्र देगे। तुम जिस अस्त्रसे लडना चाहो, बता दो। हममेसे केवल एक व्यक्ति ही तुमसे लड़ेगा। और यदि तुम जीत गये तो सारा राज्य तुम्हारा ! कहो, यह तो अधर्म नही है ?—स्वीकार है ?

भीम—इस दुराचारीके साथ ऐसा व्यवहार बिलकुल अनावश्यक है।

दुर्योधन—मैं तो कह चुका हूँ युधिष्ठिर ! मुझे विरक्ति हो गयी है। मेरी समझमें आ गया है कि अब प्राणोकी तृप्तिकी चेष्टा व्यर्थ है। विफलताके इस मरुस्थलमें अब एक बूँद आयेगी भी तो सूखकर खो जायेगी। यदि तुम्हें इसीमें संतोष हो कि तुम्हारी महत्त्वाकाक्षा मेरी मृत देहपर ही अपना जय-स्तम्भ उठाये तो फिर यही सही। [साँस लेकर] चलो, यह भी एक प्रकारसे अच्छा ही होगा। जिन्होंने मेरे लिए अपने प्राणोकी बलि दी, उन्हें मुँह तो दिखा सकूँगा। [रुक कर] अच्छी बात है युधिष्ठिर ! मुझे एक गदा दे दो, फिर देखो मेरा पौरुष !

संजय—इस प्रकार महाराज ! पाण्डवोंने विरक्त सुयोधनको युद्धके लिए विवश किया। पाण्डवोकी ओरसे भीम गदा लेकर रणमें उतरे। दोनो वीरोमें घमासान युद्ध होने लगा। सुयोधनका पराक्रम सबको चकित कर देता था। ऐसा लगता था मानो विजय-श्री अन्तमें उन्हींका वरण करेगी। पर तभी श्रीकृष्ण के संकेत पर भीमने सुयोधनकी जंघामें गदाका भीषण प्रहार किया ! कुरुराज आहत होकर चीत्कार करते हुए गिर पड़े।

धृतराष्ट्र—हा पुत्र ! इन हत्यारोंने अधर्मसे तुम्हें परास्त किया ! संजय ! मेरे इतने उत्कट स्नेहका ऐसा अन्त ! ओह ! मैं नहीं सह सकता ! मैं नहीं सह सकता !

संजय—धैर्य, महाराज, धैर्य ! कुरुकुलके इस डगमगाते पोतके अब आप ही कर्णधार हैं।

धृतराष्ट्र—संजय ! बहलानेकी चेष्टा न करो। [रुक कर] पर ठीक कहा तुमने ! कु कुलका कर्णधार ही अन्धा है, उसे दिखाई नहीं देता !

संजय—महाराज ! ठीक यही बात सुयोधनने कही थी।

धृतराष्ट्र—क्या ? क्या कहा था सुयोधनने ? कब ?

संजय—जब सुयोधन आहत होकर निस्सहाय भूमिपर गिर पडे तो पाण्डव जयध्वनि करते और हर्ष मनाते अपने शिविरको लौट गये। सध्या होनेपर पहले अश्वत्थामा आये और कुरुराजकी यह दशा देखकर बदला लेनेका प्रण करके चले गये । फिर युधिष्ठिर आये। सुयोधनके पास आकर वह झुके, और शान्त स्वरमे बोले—

[दुर्योधनकी कराह जो बीच-बीच में निरन्तर चलती रहती है]

युधिष्ठिर—दुर्योधन ! दुर्योधन !! आँखे खोलो भाई !

दुर्योधन—**[कराहते हुए]** कौन ? कौन ? युधिष्ठिर ! युधिष्ठिर ! तुम क्यो आये हो ? अब क्या चाहते हो ? तुम राज्य चाहते थे वह मैंने दे दिया, मेरे प्राण चाहते थे, वे भी मैंने दे दिये ! अब क्या लेने आये हो मेरे पास ! अब मेरे पास ऐसा कौन-सा धन है जिसके प्रति तुम्हे ईर्ष्या है ! जाओ, जाओ दूर हो मेरी आँखोसे ! जोवनमे तुमने मुझे चैन नही लेने दिया, अब कमसे कम मुझे शान्ति से मर तो लेने दो युधिष्ठिर ! जाओ ! चले जाओ !!

युधिष्ठिर—तुमने भूल समझा दुर्योधन ! मै कुछ लेने नही आया ! मै तो देखने आया था कि .

दुर्योधन—कि अन्तिम समयमे मै किस तरह निस्सहाय निर्बल पशुकी भाँति तडप-तडपकर अपना दम तोडता हूँ ? मेरी मृत्युका पर्व मनाने आये हो न ? मेरी आहोका आलाप सुनने आये हो न ? अरे निर्दयी ! तुम्हे किसने धर्मराजकी सज्ञा दी ? जो सुखसे मरने भी नही देता वही धर्मका ढोल पीटे, कैसा अन्याय है !

युधिष्ठिर—अर्थका अनर्थ न करो दुर्योधन ! मै तो तुम्हे शान्ति देने आया था। मैने सोचा, हो सकता है तुम्हे पश्चात्ताप हो रहा हो ! यदि ऐसा हो, तो मै तुम्हारी व्यथा हलकी कर सकूँ, इसी उद्देश्यसे मै आया था।

दुर्योधन—हाय रे मिथ्याभिमानी ! अब भी यह दयाका ढोंग नहीं छोड़ा !- पर युधिष्ठिर ! तनिक अपनी ओर तो देखो ! पश्चात्ताप तो तुम्हे होना चाहिए था ! मैं क्यो पश्चात्ताप करूँगा ! मैने ऐसा कौन-सा पाप किया है ? मैने अपने मनके भावोको गुप्त नही रखा, मैने षड्यन्त्र नही किया, मैने गुरुजनोका वध नही किया।

युधिष्ठिर—यह तुम क्या कह रहे हो दुर्योधन !

दुर्योधन—[किटकिटाकर] दुर्योधन नही, सुयोधन कहो धर्मराज ! सुयोधन। क्या अब भी तुम्हारी छाती ठण्डी नही हुई ? क्या मुझे मारकर भी तुम्हे सन्तोष नही हुआ जो मेरी अन्तिम घडीमे मेरे मुँहपर मेरे नामकी खिल्ली उडा रहे हो। निर्दयी ! क्या ईर्ष्यामे अपनी मानवता भी भस्म कर दी ?

युधिष्ठिर—क्षमा करो भाई। अब तुम्हे और अधिक कष्ट नही पहुँचाना चाहता। पर मेरे कहने न कहनेसे क्या, आनेवाली पीढियाँ तुम्हे दुर्योधनके नामसे ही सम्बोधित करेगी, तुम्हारे कृत्योका साक्षी इतिहास पुकार-पुकारकर ..

दुर्योधन—मुझे दुर्योधन कहेगा, यही न ! जानता हूँ युधिष्ठिर ! मै जानता हूँ। मुझे मारकर ही तुम चुप नही बैठोगे। तुम विजेता हो, अपने गुरुजनो और सगे-सम्बन्धियोके शोणितकी गगामे नहाकर तुमने राजमुकुट धारण किया है। तुम अपनी देख-रेखमे इतिहास लिखवाओगे और उसका पूरा-पूरा लाभ उठानेमे क्यो चूकोगे ? दुर्योधनको सदाके लिए दुर्योधन बनाकर छोडोगे। [कराह कर] उसकी देह ही नही, उसका नाम तक मिटा दोगे। यह मै अच्छी तरह जानता हूँ। [रुककर] मेरे मरनेपर तुम जो चाहो करना, मै तुम्हारा हाथ पकडने नही आऊँगा। पर इस समय जब तुम्हारा सबसे बडा शत्रु मर रहा है, उसे इतना न्याय तो दो कि उसका मिथ्या अपमान न करो।

युधिष्ठिर—युधिष्ठिरने सदा न्याय ही किया है सुयोधन ! न्यायके लिए वह वडे-वडे दु ख उठानेसे भी नही चूका है । सगे-सम्वन्धियो-के तडप-तडपकर प्राण त्यागनेका यह भीपण दृश्य ! अवलाओ-अनाथोका यह करुण चीत्कार किसी भी हृदयको दहलानेके लिए पर्याप्त था । पर सुयोधन ! मै इस सहारके दृश्योको भी शान्त भावसे सह गया, क्योकि न्यायके पथपर जो भी मिले, सव स्वीकार है ।

दुर्योधन—यह दम्भ है युधिष्ठिर ! यह मिथ्या अहकार है । मै तुम्हारी यह आत्मप्रशसा नही सुन सकता, इसे तुम अपने भक्तोके ही लिए रहने दो । तुम विजयकी डीग मार सकते हो, पर न्याय-धर्मकी दुहाई तुम मत दो । स्वार्थको न्यायका रूप देकर धर्मराजकी उपाधि धारण करनेमे तुम्हे सतोप मिलता है तो मिले, मेरे लिए वह आत्मप्रवचना है, मै उससे घृणा करता हूँ ।

युधिष्ठिर—स्वार्थ ! दुर्योधन, स्वार्थ ?

दुर्योधन—और नही तो क्या ! जिस राज्य पर तुम्हारा रत्ती-भर भी अधिकार नही था उसीको पानेके लिए तुमने युद्ध ठाना, यह स्वार्थका ताण्डव नृत्य नही तो और क्या है ? भला किस न्यायसे तुम राज्याधिकार की माँग करते थे ?

युधिष्ठिर—सुयोधन ! मनको टटोलकर देखो । क्या वह तुम्हारे कथन-का समर्थक है ? क्या तुम नही जानते कि पिताके राज्यपर पुत्रका अधिकार सर्व-सम्मत है ? फिर महाराज पाण्डुका राज्य मेरा हुआ या नही ?

दुर्योधन—वस, तुम्हारे पास एक यही तर्क है न ! परन्तु युधिष्ठिर ! क्या तुमने कभी भी यह सोचा कि जिस राज्यपर तुम अधिकार चाहते थे वह तुम्हारे पिताके पास कैसे आया ? क्या जन्मा-धिकारसे ? नही । तुम्हारे पिताको राज्यकी देखभाल का कार्य केवल इसलिए मिला कि मेरे पिता अन्धे थे । राज्य-

सचालनमे उन्हे असुविधा होती। अन्यथा उसपर तुम्हारे पिताका कोई अधिकार न था, वह मेरे पिताका था।

युधिष्ठिर—यह तो ठीक है। पर एक बार, चाहे किसी भी कारणसे हो, जब मेरे पिताको राज्य मिल गया, तब उसके पश्चात् उसपर मेरा अधिकार हुआ या नही? क्या राजनियम यह नही कहता?

दुर्योधन—राजनियमकी चिन्ता कब की तुमने! अन्यथा इस बातके समझनमे क्या कठिनाई थी कि तुम्हारे पिताके उपरान्त राज्य पर मूल अधिकार मेरे पिताका ही था। वह जिसे चाहते, व्यवस्थाके लिए उसे सौप सकते थे।

युधिष्ठिर—यह केवल तुम्हारा निजी मत है! आज तक किसीने भी इस प्रकारका कोई सन्देह प्रकट नही किया। पितामह भीष्म, महात्मा विदुर, कृपाचार्य अथवा स्वय महाराज धृत-राष्ट्रने भी कभी ऐसी कोई बात नही कही।

दुर्योधन—यही तो मुझे दुख है युधिष्ठिर! कि तथ्य तक पहुँचनेकी किसीने भी चेष्टा नही की। एक अन्यायकी प्रतिष्ठाके लिए इतना ध्वस किया गया और सब अन्धोकी भाँति उसे स्वीकार करते गये। सबने मेरा हठ ही देखा, मेरे पक्षका न्याय किसीने न देखा। और जानते हो, इसका क्या कारण था?

युधिष्ठिर—क्या?

दुर्योधन—सब तुम्हारे गुणोसे प्रभावित थे, सब तुम्हारी वीरतासे डरते थे। कायरोकी भाँति, रक्तपातसे बचनेके प्रयत्नमे वे न्याय और सत्यका बलिदान कर बैठे। वे यह नही समझ पाये कि भय जिसका आधार हो, वह शान्ति स्थायी नही हो सकती।

युधिष्ठिर—गुरुजनोपर तुम व्यर्थ ही कायरताका आरोप कर रहे हो। यदि मेरे पक्षमे न्याय न होता तो कोई भी मुझको राज्य देनेकी माँग क्यो करता?

दुर्योधन—तभी तो कहता हूँ युधिष्ठिर ! कि स्वार्थने तुम्हें अन्धा बना दिया । अन्यथा इतनी छोटी-सी बात क्या तुम्हे दिखाई न पड जाती कि जितने धार्मिक और न्यायी व्यक्ति थे, सबने इस युद्धमें मेरा साथ दिया है । यदि न्याय तुम्हारी ओर था तो फिर भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा—सब मेरी ओरसे क्यो लडे ? क्या वे जान-बूझकर अन्यायका साथ दे रहे थे ? यहाँ तक कि कृष्ण जैसे तुम्हारे परम मित्रने भी मेरी सहायताके के लिए अपनी सेना दी । वह चतुर थे, दोनोंसे मैत्री रखना ही उन्होने अच्छा समझा । ऐसा क्यो हुआ ? बोलो ! इसीलिए न, कि न्याय वास्तवमे मेरी ओर था ?

युधिष्ठिर—सुयोधन ! मैं तुम्हे सान्त्वना देने आया था, विवाद करने नही । मै तो तुम्हारी पीडा बँटा लेने आया था । क्योकि तुम चाहे कुछ समझो, मेरी इस बातका तुम विश्वास करो कि मै इस रक्तपातके लिए तैयार न था, मेरी इच्छा यह कदापि नही थी ।

दुर्योधन—मैं इसका कैसे विश्वास करूँ ? क्या तुम्हारे कह देनेसे ही ? पर तुम्हारे वचनोसे भी सशक्त स्वर है तुम्हारे कार्योका, जीवनकी गतिविधिका, और वह पुकार-पुकार कर कह रही है कि युधिष्ठिर शोणित-तर्पण चाहता था, युधिष्ठिर रक्तकी होली खेलनेके लिए ही सारे अवसर जुटा रहा था । भविष्य को भी तुम चाहो तो बहका सकते हो युधिष्ठिर ! पर सुयोधन को नही बहका सकते । क्योकि उसने अपने बचपनसे लेकर अबतक की एक-एक घडी तुम्हारी ईर्ष्याके रथकी गडगडाहट सुनते हुए बितायी है, तुम्हारी तैयारियोने उसे एक रात भी चैनसे नही सोने दिया ।

युधिष्ठिर—सुयोधन ! मुझे लगता है, तुम सुध-बुध खो बैठे हो, तुम प्रलाप कर रहे हो । भला ज्ञानमे भी कोई ऐसी असम्भाव्य बातें

कहता है ! जो पाण्डव तुमसे तिरस्कृत होकर घर-घर भीख माँगते फिरे, वन-जगलोकी धूल छानते फिरे, उनके सम्बन्धमे भला कौन ज्ञानी व्यक्ति तुम्हारे इस कथनका विश्वास करेगा ?

दुर्योधन—मै जानता हूँ युधिष्ठिर ! कोई विश्वास नही करेगा। और करना भी चाहे तो तुम उसे विश्वास न करने दोगे। पर इससे क्या ? सत्यको दबाकर उसे मिथ्या नही किया जा सकता। बचपनसे, जब हमलोगोने एक साथ शिक्षा पायी, तबसे आज तकके सारे चित्र मेरी दृष्टिमे हरे है। पुरोचनको कपटसे मारकर तुम पाचाल गये, और वहाँ द्रुपदको अपनी ओर मिलाया। तभी तो तुम्हारा बल बढता देखकर पिताजी ने तुम्हे आधा राज्य दिया।

युधिष्ठिर—मै तो यह जानता हूँ कि आधे राज्यपर मेरा अधिकार था।

दुर्योधन—सत्यको ढँकनेका प्रयत्न न करो युधिष्ठिर ! उसे निष्पक्ष होकर जाँचो। मेरे पास प्रमाणोकी कमी नही है। आधा राज्य पाकर भी तुमने चैन न लिया, तुमने अर्जुनको चारो ओर दिग्विजयके लिए भेजा। राजसूय यज्ञके बहाने तुमने जरासन्ध और शिशुपालको समाप्त किया। यहाँ तक कि जुएमें, खेल-खेलमें भी तुम अपनी ईर्ष्या नही भूले, और तुमने चटसे अपना राज्य दाँव पर लगा दिया कि यदि तुम जीते तो तुम्हें मेरा राज्य अनायास ही मिल जाय। वनवास उसी महत्त्वाकाक्षाका परिणाम था, मेरा उसमें कोई हाथ न था।

युधिष्ठिर—तुमने जिस तरह भरी सभामें द्रौपदीका अपमान किया....

दुर्योधन—मेरा अपमान भी द्रौपदीने भरी सभामें ही किया था। तब तुम्हारी यह न्याय-भावना क्या सो रही थी ? फिर द्रौपदीको दाँव पर लगाकर क्या तुमने उसका सम्मान करनेकी चेष्टा की थी ? जिस समय द्रौपदी सभामें आयी, उस समय वह द्रौपदी नही थी, वह जुएमें जीती हुई दासी थी।

युधिष्ठिर—यह तुम कैसी विचित्र बात कर रहे हो !

दुर्योधन—सत्यको विचित्र मानकर उडा नही सकते युधिष्ठिर ! अपने ही कृत्यसे वनवास पाकर भी उसका दोप मेरे ही माथे मढा गया, और फिर उस वनवासका एक-एक क्षण युद्धकी तैयारी-मे लगाया गया। अर्जुनने तपस्या-द्वारा नये-नये शस्त्र प्राप्त किये। विराटराजसे मैत्री कर नये सम्बन्ध बनाये गये, और अवधि पूर्ण होते ही अभिमन्युके विवाहके बहाने मित्र राजाओ को निमन्त्रण देकर एकत्रित किया गया। युधिष्ठिर ! क्या स कटु सत्यको तुम मिटा सकते हो ?

युधिष्ठिर—यदि जो कुछ तुम कह रहे हो वह सत्य है तो सुयोधन ! तुम मेरा विश्वास करो कि तुमने प्रत्येक घटनाके उल्टे अर्थ लगाये है। जो नही है, उसे तुमने कल्पनाके आरोप-द्वारा देखा है। यह सब मिथ्या है।

दुर्योधन—किन्तु यही बात मै तुम्हारे लिए कह सकता हूँ ! क्योकि अन्तर्यामी जानते है कि मैने कोई बुरा आचरण नही करना चाहा। मैने केवल अपनी रक्षा की। जब तक तुमने आक्रमण नही किया, मै चुप रहा, जब मैने देखा कि युद्ध अनिवार्य है तो फिर मुझे विवश होकर वीरोचित कर्त्तव्य करना पडा।

युधिष्ठिर—अभिमन्यु-वध भी क्या वीरोचित था ?

दुर्योधन—एक-एक बातपर कहाँ तक विचार करोगे, युधिष्ठिर ! जब भीष्म, द्रोण और कर्णका वध वीरोचित हो सकता है, तो फिर अभिमन्यु-वधमे ही ऐसी क्या विशेषता थी ? और आज भी भीमसेनने मुझे जिस प्रकार पराजित किया है वही क्या वीरोचित कहलायेगा ? पर युधिष्ठिर ! मेरे पास अब इतना समय नही है कि इन सबकी विवेचना करूँ। मै तो सबकी सार बात जानता हूँ कि तुम्हारी महत्त्वाकाक्षा ही इस नर-

संहारका, इस भीषण रक्तपातका मूल कारण है। मैं तो एक निस्सहाय, विवश व्यक्तिकी भाँति केवल जूझ मरा हूँ। तुम्हारे चक्रान्तमें मेरे लिए यही पुरस्कार निर्धारित किया गया था।

युधिष्ठिर—सुयोधन! तुम्हें भ्रान्ति हो गयी है, तुम सत्य और मिथ्याका भेद करनेमें असमर्थ हो। तुम्हारे मस्तिष्ककी यह दशा सचमुच दयनीय है।

दुर्योधन—बड़े निष्ठुर हो युधिष्ठिर! मरणोन्मुख भाईसे दुराव करते तुम्हारा हृदय नहीं पसीजता! कुछ क्षणोंमें ही मैं इस लोकके परे पहुँच जाऊँगा। मेरे सम्मुख यदि तुम सत्य स्वीकार कर भी लोगे तो तुम्हारे राजत्वको कोई हानि न पहुँचेगी [कराहता है] पर नहीं, मैं भूल गया। तुम तो अपने शत्रुकी इस विकल मृत्युपर प्रसन्न हो रहे होगे। आज वह हुआ जो तुम चाहते थे, और जो मैं नहीं चाहता था। मैंने अपने सम्पूर्ण जीवनका एक-एक पल तुम्हारी महत्त्वाकांक्षाकी टकराहटसे बचनेमें लगाया। परन्तु मेरे सारे प्रयत्न निष्फल हुए। वह देखो, वह अँधेरा बढ़ा आ रहा है। साँझ हो रही है। मेरे जीवनकी अन्तिम साँझ। [पृष्ठभूमिमें सारंगीपर करुण आलाप, जो चढ़ता जाता है] और उधर मेघ घिरे आ रहे हैं, द्रौपदीके बिखरे केशोंकी भाँति! वे मुझे निगल लेंगे! युधिष्ठिर! जाओ, जाओ, मुझे मरने दो! तुम अपनी महत्त्वाकांक्षाको फलते-फूलते देखो! जाओ, स्वजनों और बन्धु-बान्धवोंके रक्तसे अभिषेककर राज्य-सिंहासन पर विराजो! मैं तुम्हारे चरणोंसे रौंदे हुए काँटेकी भाँति तुम्हारे मार्गसे हटे जाता हूँ।

युधिष्ठिर—इतने उत्तेजित न हो सुयोधन। वीरोंकी भाँति धैर्य रखो! शान्त होओ।

दुर्योधन—घबराओ नहीं युधिष्ठिर! मेरी शान्तिके लिए तुम जो उपाय कर चुके हो, वह अचूक है। दो क्षण और, फिर मैं सदाको

शान्त हो जाऊँगा ! पर अन्तिम साँस निकलनेके पहले युधिष्ठिर ! एक बात कहे जाता हूँ । तुम पश्चात्तापकी बात पूछने आये थे न ? मेरे मनमें कोई पश्चात्ताप नही है । मैने कोई भूल नही की । मैने भयसे तुम्हारी शरण नही माँगी ! अन्त तक तुमसे टक्कर ली, और अब वीरगति पाकर स्वर्ग जाता हूँ । समझे युधिष्ठिर ! मुझे कोई ग्लानि नही है, कोई पश्चात्ताप नही है । केवल एक ... केवल एक दु ख मेरे साथ जायगा ।

युधिष्ठिर—क्या ?

दुर्योधन—यही .. यही कि मेरे पिता अन्धे क्यो हुए । नही तो, नही तो...

[करुण आलाप उठकर धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है ।]

• • •

अजन्ताकी गूँज

पात्र :

वाचक

विनोद [आनन्द]

रंजना [माया]

गाइड

वाणी

धृति

गायिकाएँ

अवधि
४५ मिनट

अजन्ताकी गूँज

[पियानोकी गूँज धीरे-धीरे उठती है]

वाचक—अजन्ता ! भारतीय चित्र-कलाका अमर स्मारक अजन्ता ! पूर्वकी संस्कृतिका अपूर्व चित्राधार, जिसके रंगोंने सदा शान्ति और सुखकी वर्षा की है, जिसके चित्रोंमें इस प्राचीन देशकी गौरव-गाथा गूँज रही है, जिसके प्रांगणमें जीवनकी करुणा-धारा का शीतल संगीत मुखरित होता रहा है। वही विश्व-विख्यात कला-केन्द्र अजन्ता ! [रुककर] और इसी अजन्तामें एक संध्याको चित्रकार विनोद अपने मनकी विकलतासे त्रस्त होकर शान्ति खोजनका प्रयत्न कर रहा था।

[विनोदका स्वर धीरे-धीरे पास आता है]

विनोद—यह न भूलो रंजना, कि मैं चित्रकार हूँ। कहीं तुम इन चित्रोंको मेरी आँखोंसे देख सकती। [साँस लेकर] सचमुच, अजन्ताके विषयमें जो कुछ पढ़ा-सुना था, सत्य उससे भी बढ़कर निकला।

रंजना—हाँ, यह तो मैं भी मानती हूँ। यदि इन चित्रोंमें ऊँची कला न होती तो क्या भला देश-विदेशसे इतने दर्शक यहाँ आते ?

विनोद—क्या कह रही हो ?

रंजना—क्यों, कुछ झूठ कह रही हूँ।

विनोद—नहीं, झूठ-सचकी बात नहीं, बात केवल यह है कि मैं कुछ और कह रहा था और तुम कुछ और समझ रही हो। [धीमेसे] पर यह तो कोई नई बात नहीं।

रंजना—दूसरेके मनकी बात मैं कैसे समझ सकती हूँ ?

विनोद—तो फिर कलाको समझनेकी चेष्टा भी व्यर्थ है। कलाके मूलमें मनुष्यकी भावनाएँ ही होती हैं। कलाको समझनेके लिए

भावनाओ तक पहुँचे विना उसका सही मूल्याकन कैसे सम्भव है ?

रंजना—मानती हूँ। किन्तु इसके लिए भावनाओको व्यक्त करनेका कौशल भी होना चाहिए। मेरी समझमे इन चित्रोकी सफलता यही है कि इनमे चित्रकारकी भावनाएँ मूर्त्त हो उठी हैं।—एक तुम्हारे चित्र होते हैं। मात्र अनगिनती रेखाओका जाल। कोई समझना चाहे भी तो क्या समझे ?

विनोद—मर्माघात मत करो जना ! अपनी असफलताका मुझे वडा सोच है। और सच पूछो तो मैं इसीलिए यहाँ आया हूँ कि इन चित्रोसे कुछ सीख सकूँ, अजन्ताके इस कला-मन्दिरका कुछ दान अपनी झोलीमे भर सकूँ।

रंजना—कभी-कभी तुम कैसी वच्चो की-सी वाते करने लगते हो! मान लो, अजन्तामे आकर सव चित्रकार वन सकते तो फिर क्या वात थी ! चित्रकला यो नही आती।

विनोद—तो फिर कैसे आती है ?

रंजना—यह मैं क्या जानूँ ? किसी चित्रकारसे पूछो। शायद वह वता सके।

विनोद—चित्रकार तो मैं भी हूं, और तुम मेरा विश्वास करो रजना ! आज कई महीनोसे मैं लगातार अपने मनसे यही एक प्रश्न करता रहा हूँ, कि वह क्या है जिसे मैं जानता नही, पर जिसके बिना मेरे चित्रोमे सजीवता नही आ पाती। न जाने कितनी शैलियोमे, न जाने कितने विषयो पर, न जाने कितने गोसे मैंने प्रयोग किये पर मुझे सन्तोष नही मिला। मानो मेरे मनका चित्र मनमे ही रह जाता है। मेरी कूँचीकी कलामे वह वँध नही पाता।

रंजना—कारण ?

विनोद—मैं स्वय नही जानता। पर इतना जानता हूँ कि जब तक मैं

इस कारणको खोज न निकालूंगा तब तक मेरी कलामे जीवन नही आ सकता, तब तक मै अपनी सार्थकता नही पा सकता ।

रंजना—यह भी तो हो सकता है कि तुम्हारे पास वह पूंजी ही न हो जो कला को जीवन देती है । तुम्हे महान् चित्रकार बनना ही पडेगा, यह किसी शास्त्रमे तो लिखा नही है ।

विनोद—व्यग्य भी क्या आजकलकी सभ्यताका अग है ?—पर, तुम कुछ भी कहो, मेरा निश्चय है कि मै सफल चित्रकार बन कर रहूँगा । उस रहस्यको खोजकर ही रहूँगा, जिसके अभावमे कला निष्प्राण रह जाती है । हो सकता है, तुम्हे विश्वास न आये, पर इस कला-मन्दिरके इस शान्त वातावरणमे, मुझे लगता है, वह रहस्य आज भी विद्यमान है, केवल आँखे चाहिए ।

[रजना हँसती है]

गाइड—चलिये विनोद बाबू ! आगे चलिये । एक तो यो ही आप देर से आये है । इस तरह तो आप महीनो मे भी न देख पायेगे ।

रंजना—चलिये ।

विनोद—चलिये ।

गाइड—यह देखिये, यह है महाभिनिष्क्रमण का चित्र—जब ज्ञानकी खोजमे युवराज सिद्धार्थने राजपाटको लात मारकर वनका मार्ग ग्रहण किया था । देखिये, सिद्धार्थके भाव चित्रकारने कितनी सुन्दरतासे अकित किये है । करुणा और क्षमाका कितना सुन्दर मेल दिखाया गया है ।

विनोद—अद्भुत ! चित्रकारकी तूलिका धन्य है जो इन सूक्ष्म भावोको इस पत्थर पर स्थापित कर सकी । कही मै भी   ओह ! कही मै भी

गाइड—और यह देखिये, ये चित्र स्वर्ण-हस-जातकसे लिये गये है । आइये न विनोद बाबू, वही कैसे रुक गये ?

रजना—छोड़िये भी उनको आप, मुझे बताते चलिये ।

[गाइड और रजना धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं]

गाइड—मानव-शरीर त्याग करनेपर बोधिसत्त्वने सुवर्ण-हंसके रूपमे जन्म ग्रहण किया । उस समय उन्हे अपने पूर्व-जन्मका स्मरण हो आया । एक दिन उन्होने सोनेके परोसे भरा हुआ अपना विशाल शरीर देखकर सोचा कि मै पूर्व जन्ममे मनुष्य था, और इस समय मेरी स्त्री और कन्याएँ बडे कष्टसे अपना जीवन बिता रही होगी । यह सोचकर वे वहाँसे उडे । यह देखिये, इस चित्रमे वे अपने घर आकर बैठ गये है । फिर यह अगला चित्र देखिये । बोधिसत्त्व अपना एक सोनेका पर अपनी कन्याको दे रहे है । इन परोको बेचकर उन्हे बहुत-सा धन मिल गया, और वे सुखसे रहने लगी ।

[विनोदका स्वगत-भाषण गाइडके वार्तालापके अन्तिम अंश पर आरोपित किया जाय]

विनोद—[स्वगत] महाभिनिष्क्रमण !—युवराज सिद्धार्थने अपना राज-पाट त्याग दिया, ज्ञानकी खोजमे, अमरत्वकी खोजमे ! तो क्या ज्ञानकी खोज बिना त्यागके नही होती ।—वनका मार्ग ग्रहण किया, पर क्यो ? क्या वनमे और नगरमे इतना बड़ा अन्तर है ? कह नही सकता, कह नही सकता ।—कौन कह सकता है ? रजना कहती है चित्रकारसे पूछो । पर कहाँ है चित्रकार ? यहाँ तो केवल चित्र है । और चित्र बोलते नही । फिर मेरे प्रश्नोका उत्तर कौन देगा, मै किससे पूछूँ कि चित्रोमे प्राण कैसे डाले जाते है । चित्रोमे प्राण ! जैसे इस चित्रमे, जिसकी एक-एक रेखा पूरी कहानी कह रही है । त्याग, निश्चय, शान्ति और दया—एक साथ चार-चार भाव गौतमके मुखपर कितने स्पष्ट झलक रहे है । यह है सफल कला । न जाने कौन था वह सौभाग्यशाली कलाकार ! कौन था वह कलाकार ?

वाचक—और इसी प्रकारके भावोमे लीन विनोद इतना मग्न हो गया कि वह अपने आपको भूल गया। परिचायक और रजना उसे छोडकर न जाने कब चले गये और कब सन्ध्याके चमकीले रग एक-एक कर अजन्ताके उन चित्रोकी छायामे समा गये, यह वह जान ही न सका। बस केवल सिद्धार्थके उस विशाल चित्रके सम्मुख विह्वल, विभोर, मन्त्रमुग्धकी भाँति वह खडा रहा, और अपनी अपलक दृष्टिसे मानो उसके रगोको पीता रहा।

विनोद—[चौंककर] अरे! यहाँ तो अधेरा हो गया। क्या रात हो गयी? और रजना! क्या वह भी चली गयी? कोई चिन्ता नही। आज इन चित्रोकी छायामे ही विश्राम हो।

[कुछ देर सितारपर आलाप]

विनोद—[स्वगत] कितनी शान्ति है यहाँ! मनकी उथल-पुथल मानो अपने-आप मिट गयी हो! मेरे मनमे अनजाने ही एक आश्वासन, एक शीतलता भर गई है। अजन्ताके इन चित्रोसे मानो शान्तिकी किरणे बरस रही है। [रुककर] जगत्के कोलाहलसे दूर इन निर्जन घाटियोकी गोदमे यह चित्रलोक! कितनी सुन्दर कल्पना है! कितनी विशद! जिन साधकोकी तूलिकाने पत्थरोकी इन प्राचीरोमे अपने रगोके इन्द्रजालसे भावनाओकी ये जीवन्त मूर्त्तियाँ अकित की, वे क्या जानते होगे कि युगो बाद एक दुखी और निराश कलाकार एक दिन आकर उनसे शान्तिकी भीख माँगेगा।

वाचक—यो ही कल्पनाके ताने-बानेमे उलझकर विनोदने आँखे मूँद ली, उसे नीद आ गयी।

[रात और स्वप्न व्यञ्जक वाद्य-संगीत जो धीरे-धीरे उठता है और सारे वातावरणमें भर जाता है। तब समवेत नृत्यगीतका उदय होता है।]

हम छविकी प्रतिमाएँ
हम हैं अमर रागिनी, हमसे गुञ्जित सभी दिशाएँ
वर्ण-वर्ण पर मन्द चरण धर
कम्पनमें प्राणोके स्वर भर
कलाकारके इंगित पर हम गीत सुनाती जा
हम छविकी तिमाएँ
सुन्दरतासे निर्मित है मन
मधुर कल्पनाओंके स्पन्दन
श्वास-श्वासमें बसी हुई हैं जीवनकी रेखाएँ
हम छविकी प्रतिमाएँ

विनोद—[स्वगत] अरे ! मै यह क्या सुन रहा हूँ, मै यह क्या देख रहा हूँ ! यह कही स्वप्न तो नही है ? कौन है ये सौन्दर्य-प्रतिमाएँ जिनके रूपकी रेखाएँ आँखोमे झिलमिला उठती है। स्तब्ध व्योमको अपने चचल नूपुरोसे प्रतिध्वनित करती हुई, इन्द्रधनुष के रगोके परिधानमे अपने सुमन—कोमल अगोको छुपाती मेरी ही ओर चली आ रही है .

[नृत्य-गीत अब निकट आ जाता है]

स्वप्नो के चित्रित आँगनमें छाया नृत्य हमारा
युग-युगके कूलोंसे बहती यह प्रकाशकी धारा
गौतमके जीवनकी आभा हम जगमे फैलायें !
हम छविकी प्रतिमाएँ ।

विनोद—[स्वगत] कितना दिव्य सगीत है, कितना हृदयग्राही ! [प्रतिमाएँ हँसती है] [प्रकट] कौन हो तुम मेरी आँखोमे पहेली बनकर समा जानेवाली ! इन्द्रजालकी माया, या स्वर्गकी अप्सरा। बोलो, कौन हो तुम ?

वाणी—मै अजन्ताके इस चित्राधारकी आत्मा हूँ वाणी। और ये सब मेरी सखियाँ है, इन अमर कलाकृतियोकी आत्माएँ ।

विनोद—चित्राधारकी आत्मा ! चित्रोकी आत्माएँ ? नही-नही, यह नही हो सकता। यहझूठ है, यह माया है, यह छलना है !

वाणी—क्यो ? विश्वास नही होता ? यह चित्र-लोक है। यहाँके अपने नियम है। साधारण जगकी सीमासे हमे मत बाँधो, चित्रकार!

विनोद—अरे, तो क्या तुम जानती हो कि मै चित्रकार हूँ ?

वाणी—और भी बहुत कुछ जानती हूँ। पर छोडो इसे। तुम यहाँ तक कैसे पहुँचे ?

विनोद—मै स्वय नही जानता। इन चित्रोपर अपलक दृष्टि गडाये मै मन ही मन न जाने किन विचारोमे डूबा रहा। मेरी आँखोके सामने अतीतके न जाने कितने चित्र फिर गये। मानो मै किसी तन्द्रामे खो गया। जब ध्यान आया, तो देखा, रात हो गयी है।

वाणी—फिर ?

विनोद—मैने सोचा, यही विश्राम करूँ। महीनोकी अशान्तिके बाद आज मुझे कुछ शान्ति मिली थी। —पर तुम यहाँ कैसे ?

वाणी—कहा न ! हम इस चित्र-लोककी वासिनी अमर आत्माएँ है। इस वेला नित्यप्रति हम चित्रोके बन्धन हटाकर विचरने लगती है, सगीत और उल्लासकी लहरोमे स्नान करने।

विनोद—तब तो मै बाधक हुआ। क्षमा-प्रार्थी हूँ।

वाणी—[हँसकर] हमे बाधा देना असम्भव है। हमपर किसीका अनुशासन नही। हम स्वेच्छासे आती-जाती है। हम अदृश्य है, हम अमर है।

विनोद—पर यह तो झूठ है। मै तो तुम्हे स्पष्ट देख रहा हूँ।

वाणी—यह तुम्हारी कल्पना है। अच्छा बताओ यह क्या है ?

विनोद—राग-रजित ये कोमल अँगुलियाँ कितनी सुन्दर है। कमल इनका उपमान नही, उपमेय है। कही मै इन्हे छू सकता !

वाणी—[हँसकर, हाथ बढाकर] लो !

विनोद—अरे ! यह क्या ? मेरी आँखोके सामने होते हुए भी मै तुम्हे छू क्यो नही पाता ? बोलो, तुम किस अपार्थिव तत्त्वसे निर्मित हो।

[**वाणी और उसकी सखियाँ हँसती है**].

वाणी—सौन्दर्यसे हमारा निर्माण हुआ है। कल्पना हमारा स्पन्दन है, और अनुभूति हमारा मन। हम अस्पृश्य हैं चित्रकार! रातकी निस्तब्ध निर्जनतामें हम प्रकट होती हैं और ऊषाकी पहली किरण के साथ ही हम अपने चित्रोंकी ओटमें हो जाती हैं। पर तुम किस सोचमें डूबे हो?

विनोद—सोच रहा हूँ कि क्या कहूँ। आज मनमें एक प्रश्न बार-बार टकरा रहा था, पर पास कोई न था जिससे उत्तर पूछता। और अब जब स्वर्गकी देवी-सी तुम मेरे सम्मुख उपस्थित हो, तब मेरे मनका प्रश्न न जाने किस अतलमें खो गया है कि याद ही नही आता।

वाणी—मैं मनके सारे प्रश्नोंकी समाहिति हूँ। प्रश्न मेरे सम्मुख टिक नही सकते! पर मैं जानती हूँ, तुम्हारा प्रश्न क्या था।

विनोद—सच! तो बताओ न, शीघ्र बताओ। मेरा मन विकल है।

वाणी—उतावले मत बनो। धैर्य जीवनका गुण है और संयम शक्ति। उनको खोकर तुम कुछ नही पा सकते।

विनोद—मुझे यों न भटकाओ वाणी! मैं प्रार्थना करता हूँ।

वाणी—तुम चित्रकार हो, कलाकार हो। मनपर वश रखो।

विनोद—पर मेरा मन जो नही मानता। तुम कल्पना भी नही कर सकती मेरी अशान्तिकी। जब मनका धैर्य चुक गया, जब मेरे लाख प्रयत्नों पर भी मुझे शान्ति नही मिली, तभी तो मैं यहाँ आया। मैं चाहता हूँ

वाणी—जो चाहते हो उसके अनुकूल शक्ति संचित करो।

कल्पना—देवि, वाणी! चलो न, यह व्यर्थका विलम्ब है।

वाणी—अरे हाँ! मुझे तो ध्यान ही न रहा। अच्छा तो चित्रकार, तुम अभी ठहरो। धृति!

धृति—आज्ञा देवि!

वाणी—न हो तो तुम तबतक चित्रकारके साथ रहो। इतनेमें हम नित्याराधन कर लें।

धृति—जो आज्ञा देवि !

[समवेत गान]

जागो ज्योति अमर !
अन्तर्मनमें फूल उठें ऊषाके गीतोके स्वर ।
पृथ्वी पूजा करे तुम्हारी, सागर मन्त्रोच्चार
मगल-कलश सजायें सरिता, जन-मन दीपाधार
दिशा-दिशा दीपित हो पाकर अमिताभाके वर ।
जागो ज्योति अमर !

चीन, मलय, यव, स्याम एक स्वरसे गायें जय-गान
सिन्धु-विन्ध्यमें रहें गूंजते बोधिसत्त्वके प्राण
इन चित्रोंके रंग तुम्हारे चिर कुकुम-केसर
जागो ज्योति अमर !

[गीत धीरे-धीरे दूर चला जाता है]

विनोद—जागो ज्योति अमर ! इसी अमर ज्योतिसे तो यह अजन्ता आलोकित है। अमिताभकी अमृत-वाणीसा ही यह स्वर्गिक सगीत—सचमुच इसमे इन्ही चित्रोकी प्रतिध्वनियाँ है, इन्ही जयकेतु-सी कलाकृतियोकी, पाशविकतापर मानवताकी जयकी प्रतीक, विश्वशान्तिका अनन्त सन्देश देनेवाली इन कलाकृतियोकी। जैसा गौरव-गरिमागम गौतमका तप पूत जीवन था, वैसे ही अमिट प्रकाशमय इन चित्रोके रग है।—पर, यह क्या ? अरे ! ये सारे चित्र कहाँ गये। धृति ! धृति ! मुझे ये चित्र दिखायी क्यो नही पड़ते ?

धृति—जब चित्रोकी आत्माएँ बाहर आ जाती है तो चित्र सो जाते है, निष्प्राण हो जाते है—उनकी कान्ति बुझ जाती है।

विनोद—[दुहराता है] जब चित्रोकी आत्माएँ बाहर आ जाती है तो चित्रोकी कान्ति बुझ जाती है। ठीक, ठीक कहा तुमने धृति ! अब मै समझा, मेरे चित्रोमें कान्ति क्यो नही होती।—क्योकि उनमें आत्मा नही है। यही न !

धृति—मुझसे कुछ कहा चित्रकार!

विनोद—तुमसे ?.....नही, नही, तुमसे नही.. .वह कहाँ गयी, वाणी ही नाम था न! कहाँ गयी ?

धृति—वे नृत्यके आयोजनमे लगी हैं। क्यो ?

विनोद—कुछ नही, धृति! वाणीको बुला दो धृति! मुझे अपना प्रश्न याद आ गया है। वाणी! वाणी!! वाणी!!!

[चमत्कारिक संगीत। वाणी प्रकट होती है]

वाणी—क्या बात है चित्रकार! मुझे पुकारा तुमने ?

विनोद—हाँ देवि! मुझे अपना प्रश्न याद आ गया था।

वाणी—क्या है तुम्हारा प्रश्न ?

विनोद—कह नही सकता देवि! तुम्हारे रूपमे कौन-सा जादू भरा है। मेरा प्रश्न मेरी जीभपर रक्खा है, पर मै उसे शब्द नही दे पाता। और, और . इस विवशताके कारण मेरी विकलता और भी बढती जा रही है।

वाणी—घबराओ नही, धृति तो है ही तुम्हारे पास। अभी कुछ और धैर्य रक्खो। तबतक इस सगीतका रस लो जो मानवोको दुर्लभ है।

[चमत्कारिक संगीत। वाणी जाती है]

[समवेत गान]

नये रूप, नये रग
अग अग में उमग, अग अगमे अनग
जीवनकी मधुऋतुमें
यौवनकी नवऋतुमें
शतदलके अगोपर रच दो तुम स्वर्ण-रग

रगोके हस-बाल
कुकमसे लाल गाल
चरणोमें नपुरकी गुजित हो जल-तरग
नये रूप नये रग

[सगीत धीरे-धीरे दूर होता है]

विनोद—अद्वितीय ! अपूर्व ! अनोखी है यह रूप-कल्पना, यह जीवन का उल्लास, ! प्राणोका कोना-कोना मानो धुलकर निखर उठा है। धृति, तुम तो जानती होगी—कितने पवित्र होगे उन चित्रकारोके मनके वे भाव जिनके अमिट रगोसे इन चित्रोकी सृष्टि हुई होगी।

धृति—केवल पवित्रता ही नही, उनमे शक्ति भी थी, धैर्य भी था, चित्रकार ! वे कलाकार साधक थे, अपने प्राणोको अपनी शलाका और तूली में भर देते थे। हम तो उन्ही अमर प्राणोकी प्रतिच्छवियाँ है। हमारी श्वास-श्वासमे उन्हीके स्वप्नोका छायालोक जीवन्त है।

[प्रसन्न भावसे वाणी आती है]

वाणी—कहो चित्रकार, सगीत कैसा था ?

विनोद—देवि ! इस समय मै मानो आनन्दके सागरमे मग्न हूँ। आजका यह अनुभव मै कभी न भुला सकूँगा। यहाँ आया था शान्ति पाने, प्रेरणा पाने, मनके प्रश्नोका समाधान पाने—पर इस स्वर्गिक सुखकी मैने कल्पना भी नही की थी। मेरा मन कृतज्ञतासे भर उठा है।

वाणी—और तुम्हारा प्रश्न ?

विनोद—उसकी अब चिन्ता नही है। यदि मनमे इस सुखका स्मरण बना रहा तो मुझे इससे अधिक और कुछ नही चाहिए।

वाणी—यही पर तुम भूलते हो चित्रकार ! मनके प्रश्न दबा कर नही मिटाये जा सकते। उनको उकसा कर उनसे जूझकर ही सिद्धि मिलती है। जबतक तुम्हारे मनमे सदेह, शका, पूर्वग्रह बने रहेगे तब तक आनन्दानुभूति चिरस्थायी नही रहेगी—उसकी शीतलतासे तुम्हे शान्ति नही मिल सकेगी।

विनोद—पर देवि ! मुझे अपना प्रश्न स्मरण जो नही आता। वह जैसे मेरे मनकी किसी सन्धिमे जा छुपा है।

वाणी—उसे खोजो, उसे बाहरके प्रकाशमे लाओ—मनकी गुत्थियोको सुलझानेका यही एक मार्ग है। बोलो, क्या है तुम्हारा प्रश्न !

विनोद—मुझे याद नही आता ।

वाणी—सोचो, चिन्तन करो, मनको एकाग्र करो । बोलो ! बोलो !

विनोद—मेरे मनमे मानो ज्वार उमडा है । इस त्रासको मै समझ भी नही पाता हूँ । क्या यह तुम्हारे वचनोका प्रभाव है देवि !

वाणी—बोलो, अपना प्रश्न बताओ ।

विनोद—मै कह तो रहा हूँ देवि ! मुझे याद ही नही आता । मेरी यह विकलता मत बढाओ वाणी !—धृति ! अरे, तुम भी चली गयी ? और यह क्या ! देवि ! वाणी !! मुझे—मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है मानो मै किसी अपरिचित देशमे ले जाया जा रहा हूँ । क्या है यह?—बताओ न देवि !

वाणी—केवल तुम्हारे प्रश्नका उत्तर । लो, यह देखो ।

[चमत्कार-व्यंजक सङ्गीत]

विनोद—अरे ! यह मै कहाँ आ गया ? ऐ—नही, नही, यह दृश्य तो परिचित-सा जान पडता है । निर्जन नीरव चट्टाने, घाटी मे बहती नदी, गुहा-द्वार पर यह कौन है? कोई चित्रकार जान पड़ता है । अरे ! यह तो मै ही हूँ । पर मै तो यहाँ हूँ । हे भगवन् ! यह कैसी माया है ? —वाणी ! वाणी !

वाणी—कहो चित्रकार !

विनोद—तुम स्वय देखकर बताओ वाणी ! क्या वह मै नही हूँ ?

वाणी—हाँ भी और नही भी । इसको समझनेका प्रयास मत करो, व्यर्थ होगा । इतना ही जान लो कि वह चित्रकार है । वही चित्रकार जिसका जीवन तुम्हारे प्रश्नका उत्तर है ।

विनोद—पर कौन है वह ?

वाणी—कहा न, वह चित्रकार है !—युगो पहलेकी बात है । जब अजन्ताके इस चित्राधारमे प्राण की सृष्टि हो रही थी, जब रगोके उपकरणसे प्राचीरोमे जीवन ढाला जा रहा था, तभी यह चित्रकार अपनी कला और साधना ले कर यहाँ आया और अपने मनके भावोको तूलिकामे उतारने लगा । उसके

नेत्रोमे सकल्पकी आभा थी, उसके उन्नत ललाट पर कर्मकी ज्योति थी। —चुपचाप वह अपने कार्यमे जुट गया। एक दिन, दो दिन, यो ही पूरा माह बीत गया। उसने अपनी शलाका से उसी चित्रकी रेखाएँ बाँधी जिसे देख कर तुम आज ठिठक गये थे, और जिसने तुम्हारे मनको झंकझोर डाला है।

विनोद—सिद्धार्थके महाभिनिष्क्रमणका ?

वाणी—हॉ, वही। सिद्धार्थके मुखपर अकित वे विविध भाव तुमने पढे थे। क्या उनसे यह प्रकट नही होता कि उन्हे किसी असाधारण प्रतिभा ने वहॉ अकित किया है। उसकी कूँचीमे अद्भुत शक्ति थी, उसके हाथोमे आश्चर्यजनक पटुता थी। लगता था, मानो उसने अपने मनपर पूरा वश पा लिया है। और तभी—

विनोद—तब क्या हुआ ?

वाणी—चुप, चुप—वह देखो !

माया—[दूर] आनन्द ! आनन्द !

विनोद—अरे ! यह—यह तो रजना है। विलकुल रजना है। वाणी ! यह कैसा इन्द्रजाल है !

वाणी—चुपचाप देखते रहो चित्रकार !

विनोद—पर यह तो रजना है। वह यहाँ कैसे आयी ?

वाणी—रजना है भी और नही भी। इसको समझनेका प्रयास न करना, व्यर्थ होगा।

विनोद—पर वह रजना नही है, तो और कौन है ? क्या माया ?

वाणी—हाँ, उसका नाम माया ही है। पर वह माया नही जिसकी बात तुम सोच रहे हो। वह माया है, उत्कल देशकी राजकुमारी !

विनोद—यहॉ क्यो आयी है ?

वाणी—चुप, चुप,—लो सुनो—

माया—[धीरे-धीरे पास आती है] आनन्द, आनन्द ! तुम मेरी वात मानो, मेरी पुकार भी सुन लो ?

आनन्द—नही माया, अब वह असम्भव है। मुझे भूल जाओ।

माया—मेरी पूजाको यो न ठुकराओ आनन्द! मेरा मन टूक-टूक हो जायगा। जिसका कण-कण तुम्हारे स्नेहसे सिंचित है, उसी स्वप्नलोकको इस प्रकार तोडते तुम्हें तनिक भी दु ख नही होता आनन्द!—बोलो, उत्तर दो!

आनन्द—क्या उत्तर दूँ! जो अनिवार्य है उसके लिए दु ख करना व्यर्थ है माया। मेरी मानो, मुझे छोडकर लौट जाओ।

माया—क्यो लौट जाऊँ, कैसे लौट जाऊँ? जिस पथपर इतनी दूरतक चली आयी हूँ, उसीपर लौटते अब मेरे चरण मेरा साथ नही दे सकते। मै तुमको साथ लेकर ही जाऊँगी।

आनन्द—आवेशकी बात सच नही होती माया! मनका बाँध टूट जानेपर फिर तुम अपनेको सम्भाल न पाओगी। इसीलिए कहता हूँ, आवेशकी आँधीको शान्त हो लेने दो, फिर स्थिर मनसे अपना कर्तव्य निश्चित करना!

माया—कर्तव्य मुझे नही, तुम्हे निश्चित करना है।

आनन्द—[हँसकर] कितनी विचित्र बात है, माया! एक छोटे-से झटकेने मानो तुमको बिलकुल बदल डाला है। कहाँ गयी तुम्हारी वह शक्ति, तुम्हारा वह आत्म-विश्वास। आज तो तुम बिलकुल पालहीन नौका-सी लग रही हो। मै कहा करता था न कि तुम्हारी सारी शक्ति असत्य आरोप है। जिस दिन तुम्हे वास्तविक दृढता और शक्तिकी अपेक्षा होगी, उस दिन तुम्हे खोजनेपर भी कोई सम्बल न मिलेगा।

माया—पर मै क्या जानती थी कि जिसे मै कर्णधार समझे बैठी थी, वही मुझे छोड जायेगा। यदि आज मेरी शक्ति मेरा साथ छोड रही है, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है?

आनन्द—आश्चर्य यही है कि तुम अपनी शक्तिका स्रोत किसी औरको मान बैठी थी, तुम आत्म-निर्भर नही थी, अमरबेलकी भाँति परोप-जीवी थी। यह छल है माया! यह मोह है।

माया—यदि यही मोह है, तो मै कहती हूँ, यह मोह अमर हो! मेरे प्राणो मे सदा यही गूँजता रहे।

आनन्द—मोहने आजतक कभी किसीका साथ नही दिया है माया ! मोह कभी स्थायी नही हो सकता।

माया— तने ज्ञानी न बनो आनन्द ! यदि मोह बुरा है, तो फिर तुम क्यो इस चित्र-कलाके मोहमे पडे हो ?

आनन्द—यह मोह है ? जिस पथको ग्रहण करनेमें त्याग और दृढताकी आवश्यकता हो, क्या वह मोहका मार्ग हो सकता है ? नही, कदापि नही। मोह तो आलस्यजात होता है माया ! वह तो अकर्मण्यका प्रेय होता है। मैंने तो कर्म और त्यागका पथ अपनाया है।

माया— जिस त्यागसे दूसरोंके प्राण चले जाये क्या वह स्पृहणीय है ?

आनन्द—इधर देखो ! आँसू पोछकर तनिक इस चित्रपर दृष्टि डालो। राजकुमार सिद्धार्थने जब अपना वैभव त्यागा था तो क्या उनकी प्रियप्राणा यशोधराको कष्ट न हुआ होगा ? क्या पुरवासियो के प्राणोमें पीडा न हुई होगी ? पर वे निश्चल रहे—अडिग, निष्कम्प। उनके मुखपर केवल शान्ति थी। शान्ति और दया। क्यो, जानती हो ?

माया— क्योकि वे निर्मोही थे, अपनी ही मुक्तिकी उन्हे चिन्ता थी।

आनन्द—छि माया ! दुःखमे क्या विवेक भी खो बैठी ? वे सब कुछ त्याग सके, क्योकि वे साधक थे। वे मुक्ति चाहते थे। अपनी ही नही, समस्त मानवताकी मुक्ति। उसके लिए उन्होने क्या-क्या नही सहा ? और अन्तमें वे सफल हुए। सिद्धि पाकर वे बुद्ध कहलाये।

माया— पर तुम तो . ...

आनन्द—मेरी बात छोडो। मै उनके चरणोकी धूल भी नहीं हूँ। पर मै चित्रकार हूँ, चित्रकला मेरी साधना है, मेरी तपस्या है। तुम्हारे राजसी वैभवमे उसकी प्रभा फीकी पड जाती है। ..बन्दी विहंग की भांति मुझको मुक्त वायु, मुक्त गगन चाहिए जिससे मै अपनी प्रतिभाकी किरणे उजाल सकूं। ये चित्र देखती हो ? इनमे मेरे प्राणोके रग भरे है। ये रग अमर हो, यही मेरी सिद्धि होगी।

माया— पर-पर-मै क्या करूँ आनन्द ?

[चमत्कारिक सङ्गीत]

विनोद—कितना मार्मिक दृश्य था ! आज मुझे नया प्रकाश मिल गया। अब मैं समझा, मेरे चित्रोमे प्राण क्यो नही है। मैंने कलाको स्वार्थ-साधनकी वस्तु बनाया है। मैंने यशके मोहमे अपने मनको भुला डाला है। जो कलाको, कलाकारके मनको समझनेमे असमर्थ है, उसके फेरमे मैंने अपना जीवन लुटा डाला है। पर अब कोई चिन्ता नही, अब मुझे मार्ग मिल गया ! ओह ! मेरा मन फूल-सा हलका हो गया ! वाणी ! तुमने मेरा अनन्त उपकार किया है। वाणी ! वाणी ! ! **[स्वप्न संगीत उठकर फिर धीरे-धीरे विलीन हो जाता है]**

[फिर भैरवी का आलाप]

रंजना— अरे ! विनोद ! विनोद ! उठो ! —अरे ! तुम यहाँ क्यो सो रहे हो ? उठो न।

विनोद—**[जागता हुआ]** ओह ! ओह ! अरे ! कौन ? रंजना, तुम हो !—मैं कहाँ हूँ। —तो—तो क्या सब स्वप्न था ? फिर भी—फिर भी—

रंजना— क्या कोई सपना देख रहे थे विनोद !—अरे ! यो आँखें फाडे क्या देख रहे हो विनोद ! यह देखो, मैं हूँ, मैं। रंजना।

विनोद—चुप रहो, बोलो मत !

रंजना— पर विनोद, सुनते हो—यहाँसे तो उठो—चलो, लौटो।

विनोद—मैं कही नही जाऊँगा।

रंजना— तो क्या करोगे ?

विनोद—बोलो मत ! —वह देखो !

[दूरपर धीरे-धीरे 'जागो ज्योति अमर' गीतका वाद्यसगीत उठता है]

विनोद—सुनाई पडती है वह तुम्हे—वह गूँज—अजन्ता की गूँज !

रंजना— कहाँ, कुछ भी तो नही।

विनोद—**[पागलो की-सी हँसी]** तुम नही सुन सकती, तुम नही सुन सकती, तुम माया हो। तुम . तुम .

[वाद्य सगीत धीरे-धीरे विलुप्त होता है ।]

●

और खाई बढ़ती गई

पात्र :

किशोर

माँ

पिता

मैनेजर

शान्ति

सेठ

अवधि :

६० मिनट

और खाई बढ़ती गई

[स्वरारम्भ]

किशोर—[**स्वगत**] पूज्य पिताजी ! आज शामको आपकी बीमारीका तार मिला। इससे पहले छोटे भाईके दो-तीन पत्र भी आये थे। उनमे भी आपकी बीमारीकी ही चर्चा रही होगी, लेकिन मुझे माफ करे, इधर ऐसा व्यस्त रहा कि उन्हे खोलकर पढनेका वक्त नही मिला। और इस समय ढूँढनेपर भी नही मिल रहे है, रामूने न जाने कहाँ रख दिये है। या, हो सकता है, और कागजोके साथ मे भूलसे उन्हे रद्दीमे फेक गया होऊँ। तार शामको दफ्तरसे आते वक्त मिला था, और इस समय रातके ठीक पौने दस बजे है। इस बीच मे लगातार सोचता रहा हूँ कि मुझे आपके पास जाना चाहिए या नही। क्योकि पाँच सालके इस लम्बे अरसेके बाद जब आपने अचानक मुझे बुला ही भेजा है, और सो भी अपनी बीमारी के समय, तो निश्चित ही पुत्रके नाते मेरा यह कर्तव्य हो जाता है कि मै सब कुछ छोड-छाड कर चल पडूँ, और आपके स्वस्थ हो जाने तक आपकी सेवा करूँ। यही तय करके मैने थोडी देर पहले सब सामान बाँध लिया था, लेकिन ऐन मौकेपर पैरोने जवाब दे दिया। मैने लाख कोशिश की पर मनके किसी भीतरी कोनेमे दुबकी किसी विवशताने मुझे ऐसा जकड लिया कि मै लाचार हो गया। मै जानता हूँ कि मेरे आने-न आनेसे मेरा या आपका कुछ ज्यादा बनता-बिगडता नही। मै यह भी जानता हूँ कि इन चिट्ठियो और इस तारके पीछे पिताकी कोई गहरी ममता-भरी पुकार नही है, केवल एक सामाजिक रीतिका पालन-भर है, और इसलिए प्रत्युत्तरमे मै ठीक उसी रीतिके अनुसार मनमे किसी

गहरे आवेशके न होनेपर भी आपके पास पहुँच सकता था। पर वह मैं नही कर सका।—तो मुझे क्षमा करेंगे। यों, यह क्षमा-याचना भी शिष्टाचारका ही अंग है। मेरे मनमें ऐसी कोई भावना नही है कि मैंने आपके प्रति कोई भी अपराध किया है। आज वरसोंसे मैंने पुरानी घटनाओंको वार-वार पढ लेनेकी कोशिश की है, यहाँ तक कि वे घटनाएँ मेरे मनपर इस तरह अंकित हो गई हैं कि न तो हटती हैं न धुँधली पडती हैं। उनका आघात आज भी हरा है, और वे जव-तब मेरी चेतनामें आकर मुझे त्रास दे जाती हैं। आपके भावोंतक पहुँचनेका मेरे पास कोई साधन नही है, मैं नही जानता आप क्या सोचते हैं। और आजका तार पानेके पहले मैं यह भी नही जानता था कि आप मेरे बारेमें सोचते भी हैं या नही। क्योंकि आज इस बातको पूरे पाँच साल हो गये जब आपने मुझे एक पत्र लिखा था और मेरी लम्बी चुप्पीका कारण पूछा था। तब एकवार तो मेरे मनमें आया था कि सब कुछ लिख भेजूँ। पर फिर वह व्यर्थका आवेश लगा, क्योंकि मैं जानता था कि मेरे और आपके बीचका व्यवधान आकस्मिक नही, वरन् अनिवार्य है। और छिछली भावुकता हमारे सम्बन्धोंमें कोई स्थायी अन्तर नही ला सकती। लेकिन आज सोचता हूँ कि आपकी बातका उत्तर दे दूँ। आपकी ऐसी व्याकुल बुलाहटके बावजूद जब मैं आपके सामने आ नही पा रहा हूँ, तो यह ज़रूरी है कि कही आप इसके और कोई अर्थ न लगा लें। कही यह न सोचें कि मैं लज्जित हूँ, और आपको मुँह दिखाना नही चाहता। तो आज कह ही डालूँ अपनी वह कहानी जो न मैं कहनेको उत्सुक हूँ, न आप सुननेको, पर जिसमें मेरे जीवनके सुख-दुखकी कुंजी छिपी है। और आप विश्वास करें कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसका एक-एक अक्षर सच्चा है. . . मेरी सबसे पहली स्मृति है आपके क्रोधी और कठोर स्वभावकी।

मैंने अब तक आप जैसा क्रोधी व्यक्ति नही देखा, और न कभी आपको अपने क्रोध पर पश्चात्ताप करते देखा। आपके इस क्रोध से घर-भरमे सब परेशान रहते थे। हम भाई-बहन जब छोटे-छोटे थे तब गलीमे आपके आनेकी आहट सुनते ही ऐसे कोनोमें जा छुपते थे कि यथासभव दिखाई न पडें, यहाँ तक कि मा भी दरवाजेपर खडी आपकी प्रतीक्षा करते-करते थर-थर काँपने लग जाती थी। एक बार नही,अनेक बार जब हम बैठकमे मित्रोके साथ बैठकर गपशप करते थे और अपनी हँसीसे घर सरपर उठा लेते थे तब आपके रौद्र-रूपके दर्शन-मात्र से सबकी बोलती बन्द हो जाती थी। मै यह कभी नही समझ पाया कि आपको स्वाभाविक हँसी-विनोदसे ऐसी चिढ क्यो थी, और न यह कि आप अपने बच्चोके विकासकी ओर इतनी लापरवाही कैसे करते थे। यह ठीक है कि आपने शिक्षा नाम-मात्रको ही पाई थी, पर क्या आपन पिताका वह वात्सल्य भी नहीपाया जिसके बिना भगवान् सन्तान देता ही नही? इसी तरह, आपकी कठोरता भी हमको जड बना देती थी। आपको याद है वह घटना जब भाई साहबने दावतमे क्या खाया यह न बता सकने पर आपने उनको डडोसे मारा था? या जब मेरे हाथसे अचानक काँचका गिलास टूट जानेपर आपने मुझे पाँच दिन तक नाश्तेके पैसे नही दिये थे। लेकिन तब मै छोटा था, कुछ कर सकने योग्य नही था, और प्रतिवाद करनेपर भी पिटनेके अलावा कुछ हाथ नही आयेगा, यह अच्छी तरह जानता था। लेकिन कुछ दिनो बाद बडे होनेपर एकदिन एक और घटना हुई जिसने इन सारी घटनाओको एक सूत्रमे पिरो दिया।

हमारे स्कूलकी ओरसे विद्यार्थियोका एक दल मसूरीकी सैरको जा रहा था, मैंने भी जानेका निश्चय किया। उत्साहमे भरा मै जल्दी-जल्दी घर आया.

किशोर—अम्मा, सुना तुमने? हमारे स्कूलके लड़के मसूरी घूमने जा रहे है।

मां— अच्छा! कब?

किशोर—परसो सवेरे। अम्मा! मै भी जाऊँगा। तुम पिताजीसे कह दो, सिर्फ दस रुपयेका खर्च है। बाकी रुपया स्कूल देगा।

मां— हॉ, हॉ, तब तो जरूर जाना। मै तेरे पिताजीसे कह दूँगी।

पिता— [आकर] कहॉ जानेकी बात हो रही है?

किशोर—जी, हमारे स्कूलके कुछ लडके मसूरी जा रहे है, स्कूलकी तरफसे। मैने भी नाम लिखा दिया है।

पिता— क्यो, मसूरीमे क्या रक्खा है! बोल! ये स्कूलवाले भी अजीब लोग है। पढाने-लिखाने पर तो ध्यान नही देते, बस लडकोको आवारा बनाते फिरते है। मै पूछता हूँ, मसूरीमे धरा ही क्या है?

किशोर—बात यह है

पिता— कुछ बात-फात नही है। बैठो चुप होके। मसूरी जायेगा! हुँह . !

माँ— तुम्हे भी कभी-कभी न जाने क्या हो जाता है? अरे! बच्चेका मन है। थोडा घूम-फिर आयेगा, तबियत बहल जायेगी। और फिर मसूरी तो पहाड है, वहाँ जायेगा, कुछ तन्दुरुस्ती ही सुधरेगी। याद नही है, पिछली गर्मियोमे प्रकाश भी तो मेम साहबको लेकर मसूरी गया था?

किशोर—[स्वगत] प्रकाश आपके मनकी गाँठ थी, क्योकि उसने आपकी इच्छाके विरुद्ध आपका साझा तोडा था, और आपको अलगसे नई बिजनेस जमानेमे काफी मिहनत करनी पडी थी। माँकी चतुराईने मुझे उस वक्त तो आपकी अनुमति दिलवा दी। पर दूसरे दिन रातको....

पिता— [दमेमें साँस फूलकर कराहनेकी आवाज]

किशोर—[हड़बडाकर जागकर] पिताजी ! क्या हुआ अम्मा ?

माँ— साँस उखड आया है। देख तो बेटा ! बडी देरसे तडप रहे है।

किशोर—भाई साहबको जगाऊँ ?

पिता— क्यो उसकी नीद खराब करते हो बेटा ! अभी रहने दो। [लगातार साँस फूलती रहती है]

किशोर—लाइए, आपकी पीठ सहला दूं। —जाओ अम्मा, तुम आराम करो।

पिता— हाँ धीरे-धीरे हाँ, ओह ! अब जरा चैन पडा। .. बेटा किशोर !

किशोर—हाँ, पिताजी !

पिता— मेरी तो यह हालत है कि दम भरका ठिकाना नही, और तुझे सैर-सपाटेकी सूझी है ! मैं कहता हूँ बेटा, मसूरी-फसूरी जाय भाडमे। अपनी पढाई करो, और बस घरमे मस्त पडे रहो।

किशोर—अच्छी बात है पिताजी, आप यही चाहते है तो नही जाऊँगा।

पिता— शावाश बेटा, बस जाओ। अब तो दौरा खत्म हो गया लगता है। तुम जाओ, चैनसे सोओ।

किशोर—[स्वगत] मन मारकर मै विस्तरपर आकर लेट गया। मेरे कानोमे साथियो की किलकारियाँ और आह्लादकी हँसी गूँज रही थी, और बेबसीमे हाथकी मुट्ठियाँ बन्द थी। इतने मे ही सुना....

माँ— लडका कितना सीधा है, चट मान गया। पर तुम भी बडे वैसे हो, चले ही जाने देते तो क्या गजब हो जाता।

पिता— तुम क्या जानो, आजकल दस रुपयोके क्या मतलब होते है ?

किशोर—[स्वगत] सच पूछिए, तो दस रुपयोका मूल्य मैने तभी जाना। पर क्या रुपयोमे वात्सल्य खरीद लेनेकी भी ताकत है ? यह प्रश्न वार-वार मेरे मनमे प्रबल वेगसे चक्कर काटता रहा है, और 'हाँ' कहते चारो ओर अन्धेरा छा जाता है। पर यह सत्य है, कठोर सत्य। वादमे जब मेरी समझ और जीवनकी पकड बढ गयी तब मै यह भी देख सका कि आपकी दमेकी शिकायत तो पुरानी

थी, उसका आपने केवल उपयोग किया था। और यह समझ जानेके बाद भी क्या आप यह आशा करेंगे कि मेरे मनमें आपके प्रति भक्ति या कृतज्ञता बनी रहे? और आपको यह बतानेकी मेरी बडी चाह है कि मैं अब तक तीन बार मसूरी हो आया हूँ, एकबार कर्ज लेकर, एकबार एक मित्रकी कृपासे, और तीसरीबार अपने कामके सिलसिलेमें।. . उस दिन के बाद मेरे कार्यक्रम में परिवर्तन होता गया। मैं जल्दी ही स्कूलके लिए भाग जाता, और बहुत देर बाद घर लौटता। अक्सर मैं जब लौटता तो आप दूकानसे लौटकर खाना खाकर आराम करने जा चुकते थे। मैं चुपचाप, दबे-पाँव अपने ही घरमें चोरकी तरह दुबके-दुबके आता, और माँ का दिया हुआ खाना, सर झुका कर खानेके बाद सो जाता। कभी-कभी ऐसा भी होता कि मेरे आनेतक मा सो जाती थी, और तब मुझे भूखे ही रहना पडता। लेकिन कोई भी आहट करने या किसीको जगानेकी मुझे हिम्मत न होती। बिस्तरपर लेटकर अगर नीद न आती तो भी मैं साँस खीचकर गुमसुम पडा रहता और बीच-बीचमें आपकी साँस फूलनेपर भी मैं सोनेका ही नाटक करता रहता। एकदिन रात करीब ग्यारह बजे मैं इसी तरह लौटा था कि देखा आप और अम्मा दोनो जगे हुए मेरी राह देख रहे हैं। मैं अपराधीकी भाँति सर झुकाकर धीरे-धीरे अन्दर आया।

पिता— कहाँ थे अबतक? . . . .बोलते क्यो नही, अबतक कहाँ थे?

किशोर—जरा देर हो गई।

पिता— सो तो हो गई। लेकिन थे कहाँ?

किशोर—बद्रीके यहाँ।

पिता— यह बद्री कौन है?

किशोर—मेरे साथ पढता है।

पिता— क्या कर रहे थे?

किशोर—इम्तहान नजदीक है न, उसको कुछ पढा रहा था।

पिता— अच्छा, तो अब अपनी पढाई-लिखाई छोडकर आपको दूसरोकी फिक्र सता रही है। मै कहता हूँ किशोर! तुम दिन पर दिन बिगडते जा रहे हो। जाओ, आज तुमको खाना नही मिलेगा . रुको, इधर आओ। स्कूलकी छुट्टी कै बजे होती है?

किशोर—चार बजे।

पिता— कलसे रोज पाँच बजे दूकानपर आकर बैठा करो। इधर-उधर मटरगश्ती करनेसे तो यही अच्छा है।

किशोर—लेकिन शामको खेलने न जाऊँगा, तो जुर्माना हो जायगा।

पिता— नही होगा। हम तुम्हारे मैनेजर साहबसे कहकर खेलसे तुम्हारा नाम कटवा देंगे। जाओ और देखो, जिस दिन शामको दूकानपर न आये, उस दिन शामका खाना बन्द। समझे!

किशोर—**[स्वगत]** और आपकी आज्ञानुसार मेरा शामका खाना एक तरहसे बन्द ही हो गया क्योकि आपकी सारी मारपीट मुझे दूकानपर न बिठा सकी। यह सही है कि माँ रोज ही आपसे छुपाकर खानेके लिए कहती, लेकिन मैने हमेशा आपका दिया हुआ दड सर-आँखोपर रक्खा। और अपनी कच्ची भावुकतामे मैने यह भी सोचा कि मेरे दूकानपर न जानेसे आपका जो नुकसान होता होगा वह शाम को न खानेसे पूरा हो जाता होगा। इसके अतिरिक्त आप चाहे तो इस दडके लिए म आज भी आपका कृतज्ञ हो सकता हूँ क्योकि बादमे जब मुझे अक्सर फाके करके दिन बिताने पडे, तो शामको खाना न खानेकी आदतने मुझे बडा सहारा दिया, और मेरी गरीबीका बोझ काफी हल्का कर दिया। .इस तरह और भी अनगिनत छोटी-छोटी घटनाएँ है जिनकी छाप मेरे मनपर तब प्रबल रूपसे पडी थी, और आज तक कभी भी मै उन्हे हँसीमे नही उडा सका हूँ। मैने यह भी लक्ष्य किया कि आप भरसक यह चाहते थे कि मेरे लिए आपका एक भी पैसा

खर्च न हो, मानो मैं अनचाहा आपके घरमे पैदा हो गया होऊँ। मुझे सदा अपने भाई साहबके उतरे हुए कपडे पहननेको मिले, अक्सर स्कूलमे इस बातकी हँसी हुई कि मैं नगे पैर घूमा करता था, और कभी-कभी मन चलनेपर साथियोसे भीख माँगकर फल और चाट खाया करता था। यही नही, दिवालीपर मुझे इनाममें दिया गया रुपया घरके लिए मिठाई खरीदनेमे खर्च किया गया, और कई दिन बाद क्लासमे फर्स्ट आनेपर जब मुझे स्कूलकी ओरसे वजीफा मिला तो उसी रकमसे मेरी फीस और किताबोका खर्च चलाया गया। हाँ, उसकी बदौलत मुझे दो एक बार नये कपड़े भी मिले। आपका हाथ अगर तग होता और आप मेरे ऊपर खर्च करनेमे असमर्थ होते तब भी यह व्यवहार कठोर माना जा सकता था, क्योकि मै समझदार था, आप मेरी बात सुन सकते थे और अपनी मुझसे मना भी सकते थे। पर आप भाई साहबको कालेजका खर्च खुशीसे भेजते थे और मोहनके लिए आपके और अम्माके लाड-प्यारकी कोई कमी न थी। इसलिए आपके इस व्यवहारसे मुझे सिर्फ कष्ट ही नही पहुँचा, धीरे-धीरे, आपके प्रति मेरे मनमे घृणाके अकुर भी उदित होने लगे। मै सदा अपने आपमे बन्द रहने लगा, और घरमे इस तरह रहता मानो हूँ ही नही। आपको याद होगा यह तभी की बात है जब जीजाजी कहा करते थे कि किशोर तो पूरा साधू है। और क्या यह जानकर आप रोये बिना रह सकेंगे कि मैने आस-पडोसके बहुत-से व्यक्तियो से गुपचुप अनेक बार यह पूछा था कि मै वास्तवमे आपका पुत्र हूँ, या कही औरसे आया हूँ? मनमे इसी तरहके बडे अजीब ख्याल आते, मै अपनी ही दुनियामे खोया रहता, और कुछ दिनो बाद मुझे खुद यह लगने लगा कि घरमे मै बाकी लोगोसे अलग हो गया हूँ। इन्ही दिनो हमारे स्कूलमे टीचर आये—वीरेन्द्र जी। आज नही कह सकता कि वीरेन्द्रजी न मिले होते

तो मैं क्या हो गया होता। उन्होने मुझे अनायास भावसे अपनी कृपा दी और मेरे आगे आदर्श-मार्ग प्रशस्त किये। बहुत जल्दी ही मैं कविता करने लगा। उस दिन आप कुछ प्रसन्न मुद्रामें थे

पिता— किशोर, सुना है इस बार तुम फिर क्लासमे फर्स्ट आये हो ?

किशोर—जी हाँ।

पिता— चलो, बहुत अच्छा है। मालूम पडता है, तेरा दिमाग ही कुछ तेज है, क्योकि पढते-लिखते तो तुम कुछ हो नही।

किशोर—बात यह है कि मैं क्लासमें बहुत ध्यानसे सुनता हूँ। और मुझे याद भी बहुत रहता है।

पिता— फिर भी बेटा, घरपर आकर भी पढना चाहिए। तुमको हम कितनी मिहनतसे पढा रहे है, कितना खर्च कर रहे है। कही ऐसा न हो कि सब बेकार हो जाय।

किशोर—**[स्वगत]** उस समय मेरे मनमे बडी झुँझलाहट मची। और यह बात मेरे मुँह तक आ गई कि अब तो अपने ही पैसोसे पढ रहा हूँ। पर फिर चुप रहा क्योकि खाना तो आपका दिया ही खाता था। तभी आपने कहा

पिता— मान लो, हम तुम्हें पढानेकी बजाय किसी दूकानपर बिठा देते तो अब तक कम-से-कम बीस रुपये महीने लाने लगते कि नही ?

किशोर—**[स्वगत]** इस बातकी भी बहुत तीखी प्रतिक्रिया मेरे मनमें उठी, लेकिन मै चुप ही रहा। तभी आपकी नजर मेजपर पडी

पिता— यह क्या कर रहे थे ? कविता ? सुना है कि तुम कविता अच्छी कर लेते हो ?

किशोर—जी नही, अच्छी-वच्छी तो क्या

पिता— हमको तो तुम्हारे मास्टर साहब मिले थे, वह कह रहे थे। कभी हमको भी एकाध कविता सुनाना। देखे, कैसी लिखते हो ?

किशोर—कभी क्यो, अभी सुन लीजिये।

किशोर—[स्वगत] और मैंने हालकी ही लिखी एक कविता उसी समय आप को सुनाई। वह कविता क्या थी, अब तो याद नही है, और न वह मेरे पास होगी ही क्योंकि अपनी पुरानी यादगारोंके साथ उसे भी जला चुका हूँ। लेकिन जो भी रही हो, वह आपकी समझमें नही आई।

पिता— पता नही भइया, क्या लिखा है, हमारी समझमें तो आया नही। वैसे इसका कुछ मतलब तो होगा ही।

किशोर—हाँ, मतलब तो है।

पिता— अच्छा तो किसी दिन फुर्सतसे बताना। स वक्त पढो। और हाँ, कविता लिखनेसे कुछ फायदा भी है?

किशोर—फायदा?

पिता— मेरा मतलब है, कविताके कुछ पैसे भी मिल सकते हैं?

किशोर—भला कविता बेचना कौन चाहेगा?

पिता— तो फिर इस बेगारका मतलब?

किशोर—[स्वगत] यह कहकर आप तो चले गये, पर उस दिन मेरी नीद आप साथ ही लेते गये। आपके स्वभावसे थोडा-बहुत परिचित हो जानेके कारण और मनमे अपना एक पथ निश्चित कर लेनेके कारण मैं इधर विरक्त और बन्द रहता था, पर त्रस्त नही; लेकिन आपका एक वाक्य मेरे सारे घावोंको फिर खोल गया। आपकी निगाहमे मेरी शिक्षा, मेरा जीवन, मेरी प्रतिभा सबका मूल्य बीस रुपया महीना था। और मैं स्कूल और नगरमे जो प्रशसा और आदर पाता जा रहा था, उसके स्थान पर आप मुझे अशिक्षित और नगण्य बनाकर बीस रुपया महीना पाना चाहते थे। इससे तो अच्छा था कि आप शुरूसे ही मुझे न पढाते। और इसके बादके ो-चार दिन मैंने इसी खोजमे बिताये कि आखिर जब आपको मेरी शिक्षा या विकाससे कोई सरोकार नही था तो आपने मुझे पढाने बैठाया ही क्यो? इस खोजका जो

परिणाम निकला, उससे मैं दंग रह गया। एक दिन रातको आप और अम्मा बातें कर रहे थे।

पिता— तुम तो जानती नही हो। ज्यादा पढ़-लिखकर लड़के हाथसे निकल जाते हैं। तुम सोचती हो, मैं किशोरको कुरसी तोड़ने दूंगा, या साहबी छाँटने दूंगा। अजी राम भजो! बस मैट्रिक कर ले, फिर अपनी दूकान पर बैठेगा।

माँ— बैठ लिया वह दूकान पर!

पिता— बैठेगा कैसे नही? एक फटकारमे ठडा हो जायगा।

माँ— लेकिन इतना पढ-लिखकर ।

पिता— पढाया है तो अपने कामके लिए न? आजकल बिजनेसमे भी थोडी-बहुत पढाईकी जरूरत पडती है। तुम्हे याद नही जब इस बाज़ारमे कोई अग्रेजी जानने वाला नही था तो लोग तार प वाने मेरे ही पास आते थे? तबसे अब दुनिया बहुत बदल चुकी है।

माँ— गर वह और पढना चाहे तो। एक दिन वह कह रहा था

पिता— उसके चाहनेकी भली चलाई। और फिर कही और पढ लिया तो न तुम्हारे कामका रहेगा न मेरे। बाबू साहबोकी क्या पूछती हो? मेम व्याहके लायेगा मेम। तुब तो सोचोगी कि वह तुम्हारी सेवा करे, और उधर रानीजी को अपने ही धन्धोसे फुर्सत नही मिलेगी ।

किशोर—[स्वगत] जब दो जने बात कर रहे हो तो बीचमे न बोलना चाहिए और न दो जनोकी बात तीसरेको छिपकर सुननी चाहिए —यह ज्ञान तब तक मुझे मिल चुका था। लेकिन मैं आपसे सच कहता हूँ, मुझे अपने इस कृत्य पर तनिक भी पश्चात्ताप नही हुआ। वरन् इस वार्तालापको सुनकर मेरा दुख चाहे ब गया, पर मेरा असमजस कट गया। मेरे लिए जो योजनाएँ आपने बनाई थी वे मेरी योजनाओ और मेरी आकाक्षाओकी समाधिपर ही पूरी हो सकती थी। आप मुझे अपने

लिए रुपये कमानेवाली मशीन समझ बैठे थे, मेरे सुख-दुखकी तनिक भी न सोचकर मुझे अपने मजबूत कटघरेमे बन्द कर मेरे जीवनको अपने उपयोगके लिए खाद बनाना चाहते थे। और साथ ही मेरे प्रति उतना भी विचार नही करना चाहते थे जितना किसान अपने बैलोकी जोडीके साथ या शिकारी अपने कुत्तेके साथ करता है। रुपया आपके जीवनकी सबसे बडी आकाक्षा थी, और हो सकता है, उसके समुचित कारण भी हो, पर आपके व्यवहारसे और शिक्षा एव साहित्यके वातावरणमे पलनेके कारण मैं उसको तुच्छ और हेय मानने लगा। मेरी महत्त्वाकाक्षाएँ मेरी दृष्टिमे इससे अच्छी थी, और वे अपना और दूसरोका हित करनेवाली थी। इसीलिए, आपकी योजनाओ का ध्यान आते ही मुझे ऐसा लगता जैसे मेरा दम घुटने लग गया है, जैसे मैं इन्सान न होकर गले हुए लोहेकी धार हूँ जिसे आपके बनाये हुए साँचेमे ढलना ही होगा। उन दिनो दूसरा सत्याग्रह-सग्राम जारी था। एक बार मैंने भी वानर सेनाके जुलूसमे भाग लिया, नारे लगाये और गीत भी गाये। दूसरे दिन हेडमास्टर साहबने बुलाकर समझाया और चेतावनी दी। लेकिन 'देशभक्ति कोई अपराध नही है', मैं यही कहता रहा। तब मनेजर साहबने आपको बुलाकर मेरी शिकायत की। रात को

पिता— इस किशोरके मारे तो नाकमे दम है। तुमने सुना, हजरत जुलूसमे गये थे देशका उद्धार करने। घरकी जरा फिक्र नही, दुनिया भर-के पचडेमे टाँग अडाता फिरता है। जानते हो बाबू लालता-प्रसादने क्या कहा ?

किशोर—यही कहा होगा कि माफी माँगो।

पिता— और नही तो क्या तुम्हारे लिए इनाम भेजेगे। मालूम है, स्कूलसे नाम कट जायगा तो पढाई-लिखाई भी अधूरी रह जायगी।

किशोर—कट जाये नाम, मुझे इसकी परवाह नही।

पिता— हाँ जी, तुम्हे क्यो परवाह होने लगी? तुम्हे तो मजेसे रोटी मिल जाती है न ! कभी यह भी सोचा है कि तुम्हारे लिए हमको क्या-क्या सहना पडता है ?

किशोर—[**स्वगत**] एक वार तो मेरे जीमे आया कि उबल पडूँ, पर फिर लगा कि कही आप मार-पीट न कर बैठे। इसलिए चुप रहा। पर शायद आपने इस चुप्पीका मतलब कुछ और ही समझा .

पिता— चलो, एक माफीकी अर्जी लिखकर दो।

किशोर—मै एसी अर्जी हर्गिज नही दूंगा।

पिता— क्या कहा ? फिर तो कहना। मेरा दूकानपर बैठना भी बन्द करायेगा क्या ? देखो जी, फिर यह न कहना कि बात-बात पर हाथ छोड बैते हो।

माँ— अच्छा, जाने भी दो इस वक्त। मै बादमे लिखवा दूंगी।

पिता— आफतमे जान है मेरी तो।

किशोर—[**स्वगत**] बहुत दिनो बाद मुझे पता लगा कि माँने किसी औरसे अर्जी लिखवाकर आपको दे दी थी। अब आप ही मिलान करके देखिये अपने व्यवहारका उन माता-पिताओके व्यवहारसे जिन्होने अपने पुत्रोको देशके लिए जान तक देनेकी प्रेरणा दी, जिन्होने बेटेके जेल जानेपर बिना खाये दिन काटे और सदा हँसते रहे। जिन्हे इस बातका गर्व था कि उनका पुत्र देशके लिए लडना जानता है। आप खुद ही सोचिये और बताइये कि मेरे मनपर तब क्या बीती होगी पर शायद आप कविताकी ही तरह देश-भक्तिके भावोको समझनेमे भी असमर्थ है क्योकि आपके आगे देशका कोई चित्र न था, न है। आपके प्राणोमे सिर्फ रुपयोकी खनखनाहट ही गूंज सकती है, आपके स्वप्नोमे सिर्फ दूकानकी बिक्री ही बस सकती है। और अगर आपको आज मै यह बताऊँ कि बादमे हेडमास्टर साहबने मुझे अपने घर

बुलाकर मेरी पीठ ठोकी थी और बाबू लालताप्रसादने अपने बच्चोके आगे मेरी प्रशसा की थी तो आपको कैसा लगेगा ? ... जो हो, इस घटनासे मुझे पहली बार यह आभास मिला कि मेरे और आपके बीच स्वभाव और व्यवहारका ही विरोध नही है, बल्कि हम दोनो जीवनको दो अलग-अलग ढगसे देखते है जो एक दूसरेके विरोधी है । इस आभासको स्पष्ट अनुभूतिका रूप दो नई घटनाओसे मिला । पहली घटना है भाईसाहबके विवाह की । शादीके चार-छ दिन पहले अचानक दोपहरमे आप घर आये । आपके साथ लीलाधर सुनार था और आपके हाथमे गहनो का डिब्बा था । बैठकमे जाकर आप बोले

पिता— तुम कब तक पढोगे यहाँ ?

किशोर—आज तो मेरी छुट्टी है । दिनभर पढना ही है ।

पिता— तो तुम एक काम करो, किसी और कमरेमे जाकर पढो । और देखो, यहाँ न तुम आना न और किसीको आने देना । समझ गये ?

किशोर—जी, अच्छा ।

किशोर—[स्वगत] मै अपनी किताबे लेकर बैठकसे बाहर आ गया और आपने अन्दरसे किवाड बन्द कर लिये । दिन भर आप दोनो उसीमे बन्द रहे । मैने कई बार कोशिश की यह जाननेके लिए कि अन्दर क्या हो रहा है, पर कुछ पता न चला । सिर्फ बीच-बीचमे किसी चीजको झलनेकी आवाज आ रही थी । . शामको जब मै थोडा घूमफिरकर लौटा तो देखता हूँ कि आप गहनोका बक्स खोले माँको दिखा रहे है. ..

पिता— यह सोनेकी तगडी है, ये कगन, और यह गलका हार । कैसे बने है ?

माँ— बहुत अच्छे

शान्ति—अम्मा, कितने अच्छे गहने है, चमकदार ।

माँ— अरी छू मत, बहूके लिए है ।

शान्ति—अम्मा, ये कगन तो मै लूंगी ।

माँ— अभी क्या करेगी ? जब तेरा व्याह होगा, तो तुझे भी देगे ।

[पिताकी हँसी]

किशोर—**[स्वगत]** आपकी उस हँसीको मै आज तक नही भूला हूँ, क्योकि उसने अकस्मात् मेरे मनमे सचाईका प्रकाश दे दिया । मेरी समझमे आ गया कि आपने सुनारकी मददसे दिनभरमे चाँदीका सोना बना लिया । और साथ ही यह भी समझमे आ गया कि आप सोनेके लिए सब कुछ कर सकते है । आपको यह जानकर सुख न होगा कि बादमे जब भी मै भाभीके मायके गया, मेरे पैर आपसे आप रुक जाते थे, मेरा मन ग्लानिमे डूब जाता था । . . दूसरी घटना है छोटी बहन शान्तिकी शिक्षाके बारेमे । एक दिन पाठशालाके मैनेजर आये ।

मैनेजर—कहो कविराज, क्या हाल है ?

किशोर—आपकी कृपा है, बैठिये ।

मैनेजर—लालाजी कहाँ है ?

किशोर—अभी बुलाता हूँ ।

पिता— [आकर] अच्छा, आप पधारे है ।

मैनेजर—नमस्ते ।

पिता— नमस्ते । विराजिए । कैसे कष्ट किया ?

मैनेजर—मैने कहा, बहुत दिनोसे आपने दर्शन नही दिये, मै ही मिल आऊँ ।

पिता— बडी कृपा की । कोई खास हुक्म ?

मैनेजर—एक निवेदन करने आया था । कई दिनोसे शान्ति पढने नही आई पाठशाला । तबीयत तो ठीक है न ?

पिता— हाँ, सो तो अच्छी है । बात यह है कि आपकी पाठशाला लड़कीको बहुत दूर पडती है इसलिए पासके ही स्कूलमे भरती कर दिया है ।

मैनेजर—[हँसते हुए] देखिये, आप असली बात छिपा रहे हैं।

पिता— तो फिर साफ-साफ ही समझ लीजिये। हमारी लडकी भंगीकी लडकीके साथ नही पढेगी।

मैनेजर—हद हो गई लालाजी, आप इतने समझदार होकर ऐसी बाते करते है? आप भूल गये कि आप तो ऐसे कामोमे सबसे आगे रहते थे?

पिता— तबकी बात और है, तब मैं नासमझ था। अब अपना भला-बुरा खूब समझता हूँ। आखिर हमे अपनी लडकी कुँवारी तो बैठानी नही।

मैनेजर—तो क्या आप समझते है कि इस वक्त हमारे यहाँ जो लडकियाँ पढ रही है वे सब कुँवारी ही रह जायँगी?

पिता— सो मै कुछ नही जानता। हमे दुनियासे कोई मतलब नही।

किशोर—[स्वगत] मैनेजर साहबने आपको करीब आध घटे तक हरिजनोद्धारकी उपयोगिता और उसका महत्त्व समझाया पर आप टससे मस न हुए। मैंने भी बीचमे दो-एक बार कुछ कहनेकी कोशिश की पर आपने इस बुरी तरह डाँटा कि मेरा मुँह निकल आया। हार कर वे चले गये। यही नही जब दूसरे मदरसेमे भी हरिजन-बालिकाएँ भरती कर ली गयी तो आपने शान्तिको वहाँसे भी उठा लिया, और उसकी पढाई ही बन्द हो गयी। मुझे याद है, आपने हँसकर कहा था .

पिता— हमारे यहाँकी बहू-बेटियाँ तो घरमे ही रहती है। पढी-लिखी हो तो, और न पढी हो तो . .

किशोर—[स्वगत] इन दो घटनाओने मेरी यह धारणा पक्की कर दी कि मेरे और आपके बीच कोई क्षणिक, आकस्मिक, या अहेतुक विरोध नही है वरन् विचार और आदर्शोकी एक ऐसी दीवार है जो आपकी तिजोरीकी ही तरह मजबूत है। ज्यो-ज्यो मैं होश सम्भालता गया और स्वतन्त्रता-

संग्रामके उस नवजीवनके उदय-कालमे नये आदर्श मेरे मनमे बैठते गये त्यो-त्यो मुझे यह दीवार ऊँची होती दीखती गई । इसीलिए मनका विद्रोह तो ठडा पड गया, पर विभेद और भी गहरा हो गया। मैट्रिककी परीक्षाएँ आते-न-आते मेरी मानसिक दशा ऐसी हो गई थी कि मुझे आपके साथ एक घरमे रहनेमे भी तकलीफ होती थी। आपकी '**बनियेका छैला, कुछ उजला कुछ मैला**' वाली कहावतके अनुसार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक परिष्कारके प्रति लापरवाही, आपका यह सिद्धान्त कि "**रुपया बिन बेटा हूँ तो बापसे करै न बात, रुपया बिन सारे संग-साथी दूर जानिये**" और इनसे भी बढकर हर समस्या और हर परिस्थितिमे आपका सकुचित स्वार्थ-भरा दृष्टिकोण मुझे तीव्र यत्रणा पहुँचाने लगा । मै अब अक्सर सबसे बचकर अपनी छोटी-सी बैठकमे ही बन्द रहता, रातको जब तक नीद न आती पढता और फिर वही गद्देपर लुढक जाता । आप जब गर्मीमे भीतर कोठेमे तिजोरीके पास ही सोना पसन्द करते तो, क्षमा करेंगे, मेरे लाख टालनेपर भी मुझे वे कहानियाँ याद आती जिनमे पुराने खजानोकी रक्षाके लिए साँपोके कुण्डली मारकर बैठे रहनेकी बात कही जाती है। सौभाग्यसे हमारे शहरमे कालेज न था । और मै अपने मनमे पूर्ण निश्चय कर चुका था कि मैट्रिक करते ही आपके इस कुएँको प्रणामकर कालेजका रास्ता लूँगा । मुक्तिके उस दिनकी प्रतीक्षामे मेरी जान अकुला रही थी । पर उधर आपने अपनी योजनाएँ भी तो बना रखी थी । ज्यो ही मेरा परीक्षा फल आया..

पिता— लो भाई, अब तो तुम्हारा रिजल्ट भी आ गया, अब क्या इरादा है?

किशोर—[**स्वगत**] यह बात नोट किये बिना मै न रह सका कि मेरे इतने अच्छे रिजल्टकी कोई खुशी आपके मनमे नही थी। पर इसकी शिकायत भी क्या हो ? मैने कहा

किशोर—कालेज पढूँगा ।

पिता— क्यो, अब और पढकर क्या करोगे ?

किशोर—यह तो अभी नही कह सकता, अभी तो सिर्फ आगे पढनेका ही इरादा है ।

पिता— लेकिन पढोगे कैसे ?

किशोर—क्यो आपने भाई साहवको पढाया है, मुझे नही पढायेगे ?

पिता— विलकुल फिजूलकी वात है । हमारे पास पानीमे फेकनेके लिए रुपये नही हैं ।

किशोर—ऐसे कितने रुपये लगेगे ? मुझको वजीफा पानेकी पूरी आशा है, ज्यादा से ज्यादा वीस रुपया महीना और चाहिए ।

पिता— तुम्हारे हिसाब जो वीस रुपये हैं, हमारे हिसावसे वही पचास रुपये है ।

किशोर—[**स्वगत**] मेरे मनमे आया कि कह दूँ, मुझे वेच ही क्यो नही डालते । इकट्ठे सारे रुपये मिल जायेगे ! पर मेरे बोलनेके पहले ही आप वोले

पिता— और हमने तो तुम्हारी शादीकी वात-चीत कर ली है ।

माँ— तुम भी खूब हो । अरे शादीमे क्या अडचन है ? चाहे आगे पढे या न पढे, शादी तो हो ही सकती है ।

किशोर—नही अम्मा, मैं अभी शादी नही करूँगा ।

माँ— पागल तो नही हो गया है ? शादी नही करूँगा । जानता है, कितना दे रहे हैं ? पूरे दस हजार !

किशोर—यानी मेरी शादी नही हो रही है, मुझे वेचा जा रहा है ।

पिता— शादीमे लडका बिकता तो है ही । जो सबसे ज्यादा दाम दे, वह ले, और मजा यह कि लडका भी अपना, दाम भी अपने और काम करनेवाली ऊपर से । [**जोरकी हँसी**]

किशोर—[**स्वगत**] क्रूर रसिकताके आपके उस अट्टहाससे मेरा सर चकराने लगा । मुझे लगा कि कही मुझे मिचली न आ जाय । मैं लपककर

अपनी बैठकमे आ गया, और रुद्ध क्रोध एव अव्यवत पीडासे पागल होकर मैं कमरेमे छटपटाता रहा। यदि भाई साहबने उल्टा-सीधा पढाकर मुझे शान्त न कर दिया होता तो क्या होता मैं नही जानता। . .उस दिनके बाद चार दिन तक मैं उसी बैठकमे भूखा-प्यासा पडा रहा। मैंने यह प्रण कर लिया था कि चाहे जान दे दूँगा पर आपके लौहपाशमे नही बँधूँगा। आखिर सबके समझाने-बुझानेसे आपने अन्तिम निर्णय दिया .

पिता— तुमको अपने पिताका यदि रत्तीभर ख्याल नही है, तो फिर जो तुम्हे सूझे सो करो, चाहे आगे पढो और चाहे भूखो मरो। लेकिन दो शर्तें हैं। न तो पढाईके लिए तुम्हे घरसे एक पैसा मिलेगा और न तुम हमसे अपनी शादीकी कोई उम्मीद रखना। जब तक चाहो पढना, और अपने आप जब चाहो शादी कर लेना।

किशोर—[स्वगत] आपने बात कुछ इस ढगसे कही थी मानो मुझे कडी-से-कडी सजा दे रहे हो, पर उस दिन जीवनमे पहली बार मैंने मन ही मन आपको प्रणाम किया। इतनी सस्ती मुक्तिकी मैंने कल्पना भी न की थी। शायद इसका कारण मेरे मनका यह भ्रम रहा हो कि आपके मनमे कही न कही वात्सल्यका रुद्ध स्रोत अवश्य होगा। लेकिन उस दिन एक घटना और घटी जिसने मेरे सारे भ्रमोको तार-तार कर दिया। शामके वक्त छोटी बहन शान्ति मेरे पास आई।

शान्ति— छोटे भाई साहब, तुमको तो पढनेकी छूट मिल गई, पर मैं ?

किशोर—तू भी पढना चाहती है ?

शान्ति— बहुत।

किशोर—तो जिस दिन पढाईसे उठाया था उसी दिन क्यो नही कहा ?

शान्ति— डरके मारे हिम्मत न पडी।

किशोर—लेकिन पगली, इसमे डरकी क्या बात है ? पढाई कोई बुरी चीज़ तो है नही ? और फिर देख, बिना हिम्मतके दुनियामे कोई काम नही होता ।

शान्ति— तुम्हे देखकर अब हिम्मत करूँगी ।

किशोर—डरेगी तो नही ?

शान्ति— नही ।

किशोर—चाहे कुछ हो ?

शान्ति— हाँ ।

किशोर—तो सुन । रास्ता तो एकदम पक्का है ।

शान्ति— क्या ?

किशोर—कलसे भूख-हडताल !

पिता— [आकर] खबरदार किशोर ! फिर कभी जबानसे ऐसी बात निकाली तो मुझसे बुरा कोई न होगा । खुद बिगडना है तो बिगडो । लेकिन हमारी बेटीको यह सब नाटक सिखाया तो फिर तुम जानो ।

किशोर—जी माफ करे, मुझसे गलती हुई कि आपकी बेटीको उसकी भलाईकी बात बताई । लेकिन आप यह भूल गये कि यह आपकी बेटी है तो मेरी भी बहन है ।

पिता— बडा आया कहीसे बहन वाला ! अरे ! जब उसका व्याह होगा और दहेजकी बात आयेगी तब देखूँगा कितना प्यार है बहनके लिए । मुझे पट्टी पढाने चला है ।

किशोर—लेकिन जिस समाजमे आप रहते है उसमे शादी पिताका कर्त्तव्य है, भाईका नही ।

पिता— बस तो फिर तुम अपना कर्त्तव्य देखो, हम अपना ! दूसरी बातोसे तुम्हे कोई मतलब नही ।

किशोर—[स्वगत]और मै अपना कर्त्तव्य देखने लखनऊ चला गया । जिस दिन चला उस दिन न तो आपने ही मुझे घरसे निकाला था, न मैं

ही यह कहकर आया था कि अब नही लौटूँगा, पर फिर भी मेरा मन बडे जोरसे यह कह रहा था कि आजसे तुम्हारी जीवनधारा सदाके लिए अलग हो रही है, अब विभेदकी यह दीवार कभी भी न हटेगी। जो हो, उस समय मनमे बडी-बडी उमगे थी, न जाने क्या-क्या कर डालनेकी सोचता था, इसलिए पहला भाव मुक्तिका ही था। कालेजमे आते ही अपनी पढाई और साहित्य-साधना मे जुट गया, वजीफेके अलावा ट्यूशन करके किसी तरह काम चल ही जाता। और जब कभी बीच-बीचमे भूखा भी रहना पडता तो उसे भी साधनाका एक अग मानकर स्वीकार किया। माता-पिताके होते हुए अनाथकी भाँति रहनेमे क्या कष्ट मुझे होता रहा होगा, और आज भी होता रहा है इसे कहनेकी कोशिश न करूँगा, क्योकि आप समझ न सकेगे। हाँ, उसका यह एक लाभ अवश्य हुआ कि आदर्शके मार्ग पर मेरे कदम पक्के होते गये, मुझे किसी भी व्यर्थके बन्धन या लगावने कमज़ोर नही बनाया, और साहित्य-रचनाके साथ-साथ मेरे मनमे यह चेतना भी उदित होने लगी कि मेरी और आपके बीचकी खाई आजके समाजकी सामान्य घटना है, और परिवर्तनके युगकी अनिवार्य अवस्था है। फिर भी, मेरे मनमे यह आशा बहुत दिनो तक रही कि आपसे दूर रहनेके कारण और मेरे प्रति सारे दायित्व समाप्त हो चुकनेके कारण, शायद मेरे और आपके सबध अच्छे हो सके, और धीरे-धीरे एक दिन मेरे और आपके बीचकी खाई भर जाय। इसी आशामे शुरू-शुरूमे बराबर घर आता-जाता रहा और अम्माने आपसे छिपाकर कभी-कभी मुझे रुपये भी दिये जो वात्सल्यका ही प्रमाण था। लेकिन मेरी आशा निरन्तर दुराशा बनती चली गई,क्योकि आप इस बातसे सतुष्ट नही वरन् खीझे-से लगते थे कि मै आपकी सहायताके बिना ही काम चला लेता था। आपके इस भाषणका कोई अन्त न था कि रुपया ही सारे कामो

का सार है, और ज्यो-ज्यो मेरे मनको जीवनका विस्तार मिलता जाता था त्यो-त्यो मुझे आपकी सकीर्णता और क्षुद्रता आपसे दूर फेकती जाती थी । हर वार मै घरसे एक नई वेदना लेकर आता था । एक वार यह देखकर कि अम्मा भाभीको इस तरह रखती है जैसे कोई खरीदे हुए गुलामको रखता है मै वहुत दिनो घर ही नही आया, आपको लिख दिया कि किरायेके पैसे नही है। इससे शायद आपको कुछ सतोष ही मिला हो । और एक वार गया तो देखा आप शान्तिके लिए ऐसा वर तलाश कर रहे है जिसके मॉ-वाप न हो । मुझे याद है अम्माने कहा था .

माँ— आजकलके सास-ससुर वहूको इतना तग करते है कि पूछो मत । लडका कमाऊ हो और अकेला हो तो वस सोनेमे सोहागा है ।

किशोर—[स्वगत] मेरे मनमे आया, कहूँ अगर मोहनके लिए भी कोई वेटी वाला यही कहे तो ? पर मै जानता था कि ऐसी वात मुँहसे नही निकाली जाती है । मैने वस यही किया कि फिर एक लम्बा गोता लगा दिया । . इसके बाद जव एम० ए०मे था तो एकवार घर जानेपर पडोसके सेठजी ने कहा ...

सेठ— अरे भाई किशोर, अब आखिर वापका कितना रुपया फूंकोगे ? वहुत हो लिया, अब काम-धधा सँभालो। अभी उस दिन तुम्हारे पिताजी मिले थे, कह रहे थे कि करीव सौ रुपये महीनेका खर्च पड जाता है ।

किशोर—[स्वगत]यह सुननेके बाद उस दिन घर लौटनेके लिए मुझे कितने धैर्यकी जरूरत पडी थी, यह मै ही जानता हूँ । और यह तो आपने मेरे मुँहपर ही कहा था ...

पिता— अभी हमको तो तुमने एक पैसा भी दिया नही है, उल्टे कुछ न कछ हमारा ही लग जाता है । कभी घी है तो कभी कपडे है ।

किशोर—[स्वगत] इसी तरहकी अनेक छोटी-बडी घटनाएँ होती रही और मेरे और आपके बीचकी खाई लगातार बढती गई। मुझे यह रहस्य साफ-साफ दिखाई देने लग गया कि जिस व्यक्तिके लिए जीवनका सारा तत्त्व तिजोरीमे भरा है वह भावनाकी कोमलताओसे ठीक उसी तरह अपरिचित है जिस तरह नेत्रहीन व्यक्ति प्रकाशके रगोसे। और इसीलिए ज्यो-ज्यो मेरे और आपके बीचकी खाई बढती गई त्यो-त्यो आपके प्रति मेरी शिकायते घटती गईं और यह चेतना बल पकडती गई कि समाजको बदलना ही इस समस्या का एकमात्र उपाय है। मैने धीरे-धीरे घर आना-जाना एक प्रकार से बन्द ही कर दिया और इस बातका प्रयत्न करने लगा कि बीती हुई सारी बातोको भूलकर अपने लक्ष्यपर ही अपना ध्यान केन्द्रित करूँ। समय-समयपर आपके पत्र भी आये और मै भी लिखता ही रहा, पर वे सामाजिक दिखावेके ही अग थे, और हवामें उडते पत्तोकी तरह खाईमे गिरकर मिट्टीमे मिलते रहे। इसी बीचमे मैने एम० ए० किया और लगभग तभीसे एक मित्रके सहयोगसे कलकत्तेके इस विशाल नगरमे अपनी धुनमे चलता रहा हूँ। यहाँ आनेपर शुरूमे एकाध बार आपने भी पत्र लिखे और मैने भी, लेकिन आज पूरे पाँच सालसे वे भी बन्द है क्योकि आपका अन्तिम पत्र ऐसा था जिसका उत्तर मै तब किसी भी प्रकार न दे पाया। और आज आपकी बीमारीका तार पाकर आपके पास दौड कर आनेकी बजाय या ऐसे अवसरके अनुकूल भावनाएँ प्रकट करनेकी बजाय यह जो लम्बा इतिहास लिखकर भेज रहा हूँ यह मै कभी न कर पाता यदि इस बीच मुझे एक और समाचार न मिलता। अभी लगभग एक वर्ष हुआ मै दिल्ली गया था, शायद कलकत्तेमे अन्तिम बमवर्षाके कुछ दिनो बाद ही। वहाँ अचानक कन्या-पाठशालाके मैनेजर साहब मिल गये। देखते ही बोले

मैनेजर—अरे किशोर, तुम दिल्ली आ गये ! मै तो समझ रहा था कि अभी तक कलकत्तेमे ही हो।

किशोर—हूँ तो कलकत्ते मे ही, यहाँ एक कामसे आया हूँ।

मैनेजर—भाई तुम्हारा ही कलेजा है जो ऐसी बॉम्बिगमे भी डटे हुए हो।

किशोर—जी नही, सो कोई बात नही। शुरूमे एकाध बार जरूर उलझन हुई थी, पर अब तो आदत-सी पड गई है। और फिर मेरे ख्याल मे तो ऐसा कोई खतरा नही है।

मैनेजर—चलो रहने दो, बाते बनाते हो। सारी दुनिया तो भाग गई, और तुम कहते हो खतरा ही नही है। मैने तो तुम्हारे पिताजीसे उसी दिन कहा: अरे भाई क्या कर रहे हो, लडकेको जाकर लिवा क्यो नही लाते, या उसे मार ही डालोगे? कहने लगे, यहाँ बैठाकर खिलानेको किसके पास रखा है?

किशोर—[स्वगत]और मुझे आपको यह सूचना देते हुए अफसोस है कि तब से अब तक यहाँ कोई बम-वर्षा नही हुई। . लेकिन अभी लडाई जारी है और मैने आशा त्यागी नही है। आपका पुत्र, किशोर।

[लघु विराम। शोक-व्यजक सगीत। पिताकी साँस फूल रही है।]

माँ— मैने कहा जी,कैसी तबियत है अब मै पूछ रही हूँ, बेटेकी चिट्ठी सुन ली? अजी बोलते क्यो नही? हाय राम! क्या हो गया इन्हे, बोलते ही नही। मै कह रही हूँ जी, ऐसे देख क्या रहे हो? तुम्हे मोहनकी सौगन्ध चुप मत रहो, कुछ तो बोलो।

पिता— **[बीमार, रोते हुए]** क्या बोलूँ मोहनकी माँ, मेरी तो दुनिया ही लुट गई उफ! मेरे लडकेने चिट्ठी नही भेजी, मेरे सीनेपर घूँसा मारा है। हाय यह क्या हो गया!—किशोर किशोर सुनो जी! किसी तरह किशोरको बुलवा लो . नही तो मेरा दम निकल जायगा। मै उसे समझाऊँगा। . मै . ओह किशोर अरे कोई किशोरको बुला लाओ, किशोर किशोर [रोना]

शान्ति— अम्मा, छोटे भाई साहब आये हैं ।

माँ— कौन, किशोर आया है ?

पिता— क्या कहा, किशोर आया है ? कहाँ है किशोर ? किशोर, मेरे बेटे, किशोर !

किशोर—[दौड़कर आते हुए] पिता जी, मै आ गया ।

पिता— यहाँ आ बेटा, यहाँ आ, मेरे सीनेसे लग जा । देख, सुन, अच्छी तरह सुन । क्या तुझे मेरे दिलकी धड़कन सुनाई नही देती । और फिर भी, फिर भी, तू समझता है बेटा यह तूने क्या लिख भेजा है ? इससे तो अच्छा था कि तू मुझे जहरकी पुड़िया भेज देता । उफ ! मेरा दम निकला जा रहा है । किशोर, किशोर बेटा, मै तुझे कैसे बताऊँ

किशोर—जाने दीजिये पिताजी, इस समय रहने दीजिये बाते । आप अच्छे हो जाइये—तब फिर देखा जायेगा ।

पिता— मै अब अच्छा नही हो सकता बेटा । अगर तू रूठा रहेगा तो अब मै नही बच सकूँगा । दो दिनसे मेरी तबियत सुधर रही थी, पर तेरी चिट्ठीके बाद तो मुझमे जीनेकी ताकत नही है । मेरी एक बात मान ले बेटा, तू हमे माफ कर दे ।

किशोर—है, है, यह आप क्या कह रहे है पिता जी ! ऐसी बात तो मै सुन भी नही सकता । मै सच कहता हूँ पिता जी, मुझे आपसे कोई शिकायत नही है । मै आपसे यही कहने आया था ।

पिता— नही बेटा, मेरे सीनेमे भी दिल है । तेरी चिट्ठीमे क्या-क्या भरा है, क्या मै समझ नही सकता ? लेकिन किशोर, एक बात बता, तूने ये बाते इतने दिन तक मनमे क्यो रखी ? हमे तभी बताई क्यो नही ? हमको तो तूने बिलकुल अँधेरेमे रखा ।

किशोर—छोड़िए भी इन बातोको पिता जी, आप शान्त हूजिये । सच मानिये, मै इस वक्त बहस करने नही आया ।

पिता— पर मेरा मन तो नही मानता वेटा। मै तो भीतर-ही-भीतर तडप रहा हूँ। हाय! अगर कही तू पहले ही वता देता तो हमसे यह गलती ही क्यो होती। वोल, तूने कभी वताया क्यो नही?

किशोर—कहनेको तो मै भी कह सकता हूँ पिता जी, कि ये वाते आपने मेरे विना वताये ही पहचान क्यो नही ली। पर .

पिता— इतनी ही पहचान होती वेटा, तो फिर वात ही क्या थी। तू सच मान किशोर, मैने जो कुछ किया अनजानमे। वड़ेने कहा था कि वह आई० सी० एस०मे आ जायेगा, इसीलिए इस तरहकी तंगी करके मै उसे पढाता रहा। और मोहन तो तुम जानते ही हो, जनमसे ही वीमार और कमजोर था इसीलिए उससे मुझे कोई आशा ही न थी। मै तो तेरे ही ऊपर भरोसा करके वैठा था कि तू मेरी विजनेस सँभालेगा, और वुढापेमे घरकी देखभाल करेगा। फिर भी अगर मुझे मालूम हो जाता . ..

किशोर—लेकिन पिता जी, वात इतनी ही तो नही थी। मेरे और आपके विचारोमे, रहन-सहनमे ज़मीन-आसमानका फर्क था। मेरे और आपके वीचकी खाई वनावटी नही थी, वह हम दोनोकी मजवूरी थी।

पिता— फिर भी वेटा, मुझे एक चान्स तो दिया होता। क्या मालूम, कोई सूरत निकल ही आती। कमसे कम मनमे आज यह कलक तो न होता।

किशोर—अब आपसे क्या कहूँ। यही समझिये कि जो कुछ हुआ वही होना था।

पिता— तो फिर मेरी एक वात मानेगा—वोल?

किशोर—क्या?

पिता— पहले वचन दे, टालेगा नही?

किशोर—जब तक बात न मालूम पडे .

पिता— हद हो गई किशोर, अपने बूढ़े बीमार बापकी एक बात नही मान सकता। तेरा दिल इतना कडा हो गया है ? मै कहता हूँ किशोर, वचन दे दे नही तो मेरा दिल टूट जायगा।

शान्ति— वचन दे दो भाई साहब !

किशोर—अच्छी बात है, मानूँगा।

पिता— तो बेटा, जो कुछ हो चुका, उसे भूल जा। एक बार फिर इस घरमे रह कर देख। तू जो चाहेगा वही मै करूँगा।

किशोर—लेकिन पिताजी, मेरा काम ....

पिता— तू वचन दे चुका है, देख अब सोच-विचारका वक्त नही है।

किशोर—तो फिर यही सही पिताजी, मै रहूँगा।

पिता— तूने मुझे बचा लिया बेटा !... किशोर. मेरा किशोर ..! सुनो जी, अब मै दो दिनमे चगा हो जाऊँगा। ..अच्छा बेटा, जाओ, आराम करो, सफरसे आ रहे हो। शान्ति ! भैयाको कमरा दिखा दे।

शान्ति— अच्छा पिता जी ! चलो भाई साहब। [दोनोके जानेकी आहट]

माँ— और तो सब ठीक है जी, अपना लडका घरमे रहे इससे अच्छी क्या बात है ! लेकिन मै ऊँची एडी वाली बहू घरमे नही आने दूँगी यह अभी कहे रखती हूँ। फिर बादमे कहो कि हाँ।

पिता— अरे ! तुम तो समझती नही हो। जैसे-तैसे तो लडका राजी हुआ है, अभी चुप रहो। मालूम है, वह अंग्रेजी पढा-लिखा है, मिनटोमे यह ठेकेका काम सँभाल लेगा। और अगर तीन-चार साल भी लडाई और चली तो एक-एकके सौ-सौ हो जायेगे। उसके बाद उसकी जैसी मरजी होगी वैसा करेगा।

किशोर—[पागलोकी तरह] तो फिर वही बात निकली न ? मै जानता था जरूर कही न कही कुछ बात है। आखिर आपने मुझसे छल किया न पिताजी ! लेकिन अब आप मुझे धोखा नही दे पायेगे, किसी भी तरह नही।

पिता— किशोर बेटा किशोर

किशोर—मै जा रहा हूँ पिताजी, अभी इसी वक्त। मेरे और आपके बीच की खाई कभी नही भर सकती।

पिता— किशोर . किशोर बेटा ! !

किशोर—समझ लीजिए पिताजी, किशोर मर गया . .किशोर मर गया !

[स्वरान्त]

युग-युग या पाँच मिनट

पात्र :

भटनागर

शीला

र्उमिला

मीरा

रमेश

मोहन

अवधि :

२० मिनट

युग-युग या पाँच मिनट

[स्वरारम्भ · घडीकी हलकी टिक-टिक]

मीरा— हे भगवान् ! सात बज गये, और अभी कुल दो सवाल ही हुए है। अब कैसे होगा ?

मोहन— [पास आते हुए] मीरा दीदी ! चलो चाय पीने। बाबूजी बुला रहे है।

मीरा— [एकदम नाराज होकर एक-एक शब्दपर जोर देती हुई] मुझे तग मत करो। . जाओ।

मोहन— [और पास आकर] बाबू जी कह रहे है . . .

मीरा— [झुँझलाहटमें मेजपर हाथ पटकती हुई] भई,हमारे तो मास्साब आते होगे, अभी काम पूरा नही हुआ। जा, तू जा, मैं पीछे चाय पी लूँगी।

मोहन— तो फिर मैं जाके कहे देता हूँ .

मीरा— [लिखती हुई] साच्चौक्कठासी और तीन इक्यावन हाथ लगे पाँच [कई बार दुहराती है]

[शीला और उर्मिला हाँफती और खिलखिलाती आती है।]

शीला— अब आज कालेजमे मजा आयेगा। देख लेना बेचारेका आ पढनेमे मन नही लगेगा।

उर्म्मिला—हट, तुम्हे हरदम ऐसी ही बाते सूझती है !

शीला— [परिहास से] ओ हो ! आप रानी जी तो बडी . [सहसा मीराको देखकर, बात बदलकर] अरे मीरा ! . आज यह क्या गजब ! सुबह ही सुबह पढ रही हो ?

मीरा— [झुंझलाहटमें]ये मास्साहब ऐसे बुरे है जीजी ! बीस सवाल! . . कोई ठिकाना है !

शीला— [हँसती हुई] उर्म्मिला, जरा इसका चेहरा तो देखो, कैसा मुँह वना रही है, मानो हम सवकी दीदी हो [मीराकी पीठ ठोकती हुई] क्यो री पुरखिन ! आज यह मिजाज कैसे विगडा हुआ है ?

मीरा— सच्ची जीजी, मै तो तग हो गई ! इतना दिमाग लडा रही हूँ, पर सवाल होते ही नही ।

उर्म्मिला—तो ला, मुझे दे, मै किये देती हूँ, तू दिखा देना, झगडा मिटा !

मीरा— वाह ! यह कैसे हो सकता है !

उर्म्मिला—क्यो ?

मीरा— मास्सावने कह रक्खा है—कभी किसीसे सवाल मत कराना । अगर तुमसे न हो तो साफ-साफ कह देना !

उर्म्मिला—अरे ! तो तेरे मास्सावसे कौन कहने जा रहा है !

शीला— अरे ! तुम नही जानती वह अपने मास्सावकी कितनी भक्त है, उनकी वात यह टाल नही सकती !

उर्म्मिला—[मीराको अपने पास खीचती हुई] क्यो री ! ऐसी बात है क्या !

मीरा— जीजी तो हरदम मुझे वनाया करती है । तुम्ही वताओ उर्म्मिला जीजी ! भला मास्सावकी वात मानना क्या कोई बुरी बात है ?

उर्म्मिला—[दुलराते हुए] नही, नही, वहुत अच्छी वात है । तुम हमेशा उनका कहना माना करो ।

मीरा— और फिर हमारे मास्साव तो इतने अच्छे है, उर्म्मिला जीजी ! कि बस । नई-नई किताबे लाते है, तरह-तरहकी कहानियाँ सुनाते है । और कविता तो इतनी बढिया लिखते है जीजी, कि मै क्या बताऊँ !

उर्म्मिला—अरे, तू भी कैसी पागल लडकी है ! अभी एक मिनट पहले तो कह रही थी कि मास्साव वहुत बुरे है, और-अव तारीफोके पुल वाँध दिये ।

मीरा— वह तो सवाल कठिन थे इसलिए कह रही थी । [रुककर] अच्छा

उर्म्मिला जीजी, तुमने हमारे मास्साबकी तस्वीर देखी है ? वडी अच्छी है !

उर्म्मिला—नहीं तो, कहाँ है ?

मीरा— [उत्सुकतासे] अभी दिखाती हूँ ! [आलमारी खोलकर तस्वीर निकालती है] यह लो ! देखो, मास्साब कैसे हँस रहे हैं !

उर्म्मिला—[तस्वीर देखते हुए] इसमे तो तू भी वैठी है ! यह कब खिंची ?

मीरा— पिछली वार जब मै मास्साबके घर गई थी न, तभी उनके एक दोस्तने खीची थी । अच्छी है न ?

उर्म्मिला—वहुत अच्छी लेकिन यह तो वडे ताज्जुबकी वात है । मै तो सोचती थी कि तुम्हारे मास्साव हँसना जानते ही नही !

शीला— क्या मतलव ?

उर्म्मिला—जब देखो तव उनका मुँह फूला ही रहता है, मानो दुनियाभर की चिन्ता उन्हीके सरपर आ पडी है ।

मीरा— [गंभीर होकर] यह बात नही है जीजी, असली बात यह है कि मास्साब वडे गरीव है, इसीलिए दुखी रहते है ।

उर्म्मिला—तुझे कैसे मालूम ?

मीरा— वाह ! मुझको तो वे अपनी सारी बाते वताते रहते है । मुझे घर ले जाते है, रोज नई-नई वाते सिखाते है । सच्ची बात तो यह है जीजी, वे मुझे बडा प्यार करते है ।

उर्म्मिला—[हँसकर] तुझे प्यार करते है कि .

शीला— [बनावटी क्रोधसे] कैसी उल्टी-सीधी बाते कर रही हो, उर्म्मिला !

भटनागर—[दूसरे कमरेमें से] मीरा ! ओ मीरा ! !

मीरा— आई बाबू जी !

[मीरा जाती है]

शीला— कभी कभी तो उर्म्मिला, तुम वस गजब कर देती हो । भला मीराके सामने ऐसी ऊटपटाग वाते करनी चाहिए ।

उर्म्मिला—ग्रब भई, सच्ची बात मुँहसे निकल गयी तो कोई जीभ तो काट कर फेक नही दूँगी ।

शीला— सच्ची बात, कैसी सच्ची बात ?

उर्म्मिला—ग्रच्छा तो यानी ग्रब मुझसे भी उडने लगी ? क्यो ?

शीला— [बनावटी सारल्य से] मैं समझी नही ।

उर्म्मिला—हाँ जी, ग्रब क्यो समझने लगी ? लेकिन मैं कहे देती हूँ, ग्रगर मुझसे छिपाग्रोगी तो ठीक न होगा ।

शीला— यह ग्रच्छा मजाक है । भला मैंने क्या छिपाया है ?

उर्म्मिला—तुम्हारी सूरत कह रही है, तुम्हारी ग्राँखे कह रही हैं, कि तुम बन रही हो ।

शीला— ग्रच्छी बात है, तुम नही मानती तो यो ही सही ।

उर्म्मिला—सही क्या, वह तो है ही ।

शीला— हाँ, हाँ, बाबा, है . बस !

[दोनो हँसती हैं, भटनागर ग्राते हैं]

भटनागर—[दोनो से] बैठी रहो, बैठी रहो । हाँ, शीला । ग्राजका ग्रखबार ?

शीला— शायद ग्रभी नही ग्राया, बाबूजी ।

भटनागर—ग्रच्छा रहने दो । ..तो मैं जरा बाहर जा रहा हूँ । कोई मिलने ग्राये तो कहना घण्टे भर बाद...ऐ ?

शीला— जी ।

भटनागर—ग्ररे हाँ । उर्म्मिला, ग्रच्छी याद ग्राई । देखो, ग्रपने पिताजीसे कहना कि . तुम्हारा छोटा भाई ग्रब कौन-सी क्लासमे ग्राया है ?

उर्म्मिला—जी, नवी क्लासमे ।

भटनागर—तो ग्रभी तक उसके लिए कोई ट्यूटर रक्खा तो नही ?

उर्म्मिला—ग्रभी तक तो नही रक्खा । वैसे पिताजी कह तो रहे थे पर .

भटनागर—तो बस ठीक है। तुम अपने पिताजीसे कह देना कि वे रमेश को रख ले। मीराको जो पढाते है, वही है रमेश।

उर्म्मिला—[हँसकर] जी, मै जानती हूँ।

भटनागर—कहना, मैंने कहा है इससे अच्छा ट्यूटर नही मिल सकता। ही इज ए वेरी इन्टेलीजन्ट ब्वॉय। हमेशा फर्स्ट आता है।

उर्म्मिला—भला उनको कौन नही जानता!

भटनागर—नही, नही नाम भले ही सुन लिया हो, पर उसको पूरी तौरसे जानना सहज नही है। इतना विनीत, इतना सुशील और सरल लडका है कि बस। इस बार उसको काम नही मिल पाया है। तुम मेरी ओरसे कह देना अपने पिताजीसे।

उर्म्मिला—जी, मै जरूर कह दूंगी।

भटनागर—बस, ठीक है। तो मै जा रहा हूँ, शीला।

[भटनागर जाते है]

उर्म्मिला—क्या बात है, जिसे देखिए वही रमेशके रगमे रँगा हुआ है। न मालूम उसने क्या जादू कर रक्खा है तुम लोगो पर।

शीला— [हँसीसे] तो इतनी घबराती क्यो हो? अब तो वे तुम्हारे यहाँ भी जाने लगेंगे। न हो तो परख देखना!

उर्म्मिला—मै तुम्हारी तरह कच्ची थोडे ही हूँ जो इन व्यर्थकी बातोमें अपना मन उलझाऊँ!

शीला— मै भी ऐसी नही हूँ। यह तो बस तुम्हारा ख्याल ही है।

उर्म्मिला—फिर वही बात, मै कहती हूँ तुम्हे झूठ बोलते हुए शर्म नही आती?

शीला— [व्यग्यसे] आती तो है, पर जरा कम.

[दोनो हँसती है]

उर्म्मिला—अच्छा एक बात बताओ! इधर रमेशने कोई नई कविता नही लिखी?

शीला— अच्छी याद दिलाई । मै तो दिखाना ही भूल गई । बिलकुल नये ढगकी ।

उर्म्मिला—अच्छा, देखे जरा

उर्म्मिला—[पढ़ते हुए] पथविहीन

गाऊँ कैसे, रानी ! मुझको चलनेमें उत्साह नहीं है
लौटूँ कैसे, कोलाहलमें फिर जानेकी चाह नहीं है
पहुँचूँगा मै कहाँ मुझे अब इसकी भी परवाह नहीं है
करूँ और कुछ कैसे मुझको खुली और कुछ राह नही है

चलने दो ले जायें ये पग
मझे जिधर, जिस ओर प्रिये !
मर-मर कर मिट चुकी, उठी
जो उरमें कभी हिलोर प्रिये !

आँखोंमे आँसू क्यों रानी ! मुझको तो कुछ मोह नहीं है
एकाकी ही है यह जीवन, इसमें मिलन-बिछोह नहीं है
पता बताऊँ कैसे मुझको अपने पथकी टोह नहीं है
कहना-सुनना क्या, इस जी में आज प्रेम या द्रोह नहीं है

बूझती संझा, तिमिर लपेटे
सोता मौन दिगंत प्रिये !
जाता हूँ, इस विडंबना का
आज यही हो अंत प्रिये !

[साँस लेकर] कितनी वेदना, कितना विषाद भरा है इस कविता मे ! "एकाकी ही है यह जीवन, इसमें मिलन-बिछोह नहीं है" बेचारेने अपना जीवन ही आँक कर रख दिया है ।

शीला— तुम्हे तो दया आने लग गई ?

उर्म्मिला—वास्तवमे मुझे उसपर बडा तरस आता है । और तुम हो कि उसे सान्त्वना देनेके बदले उल्टे तग करती रहती हो ।

शीला— यह एक ही रही ! भला मैंने क्या किया है ? अब कोई अपने आप तग होता रहे तो मै क्या करूँ !

उर्म्मिला—मै तो चाहती हूँ तुम उसकी कुछ सहायता करो, उसको अपनी सहानुभूति दो । बेचारेको कमसे कम एक साथी तो मिले ।

शीला— आज तुम्हे यह हो क्या गया है ! सवेरेसे ही वहकी-वहकी वाते कर रही हो ।

उर्म्मिला—वात यह है कि मुझे तो वे वडे सीधे लगते है ।

शीला— सीधे-वीधे कुछ नही । तुम अभी कवियोके मनकी क्या जानो ! दुखमें डूबे रहना तो इनको अच्छा लगता है ।

उर्म्मिला—कैसी वाते कर रही हो शीला ! भला इस वनावटी निर्ममता से कही मनका सत्य छिप सकता है !

शीला— चलो, रहने दो । तुम तो एक ही वातको पकडे हुए हो ।

उर्म्मिला--अच्छा डार्लिन्ग, तो अब चले । वहुत देर हुई !

शीला— क्यो चाय नही पियोगी ?

उर्म्मिला—नही, अब चलूँ । तो कालेजमें दर्शन तो होगे ?

शीला— अवश्य !

[उर्म्मिला जाती है]

[**थोड़ी देर तक सितार पर हलका संगीत**]

[**रमेश आता है**]

रमेश— नमस्ते !

शीला— अरे ! रमेश वावू आप । . नमस्कार । वैठिए । [**जाती हुई**] मै मीराको भेजे देती हूँ ।

रमेश— एक वात सुनिए । मै आपसे कुछ वातें करना चाह रहा था ।

शीला— कहिए ।

रमेश— कष्ट न हो तो जरा वैठ जायें ।

शीला— लीजिए, वैठ गई । अब कहिए ?

रमेश— अगर एक सीधा सवाल करूँ तो वुरा तो न मानेंगी ?

शीला— नही, नही, आप निस्सकोच कहिए ।

रमेश— देखिए, कोई अभद्रता जान पडे तो क्षमा कर दीजिएगा। [**गला साफ करता है**] आपके मतमे शादीम किसपर दृष्टि रखनी चाहिए ? प्रेम पर, या धन-सपत्ति, माता-पिताकी इच्छा पर?

शीला— [**कुछ रुककर, पीछा छुड़ानेके लिए**] मै पानी पी आऊँ ।

[**झपट कर चली जाती है**]

रमेश— [**मन ही मन**] पानी पी आऊँ, यह कैसी अजीव बात है ! यानो शीला मुझे बताना नही चाहती ! अन्यथा इस तरह चले जानेका और क्या अर्थ हो सकता है ?

[**मीरा आती है**]

मीरा— नमस्ते मास्साब !. माफ कीजिएगा, मै चाय पी रही थी ! वैठिए । अरे ! यह मोहन वडा भुलक्कड है । देखिए, आपकी कुर्सी फिर उठाकर जीजीकी मेजके पास रख दी । [**जोरसे**] मोहन ! ओ मोहन !

मोहन— आया दीदी ! [**पास आकर**] क्या है दीदी ?

मीरा— तुझसे कितनी वार कहा है कि मास्साबकी कुर्सी यहाँसे मत उठाया कर ! तू समझता क्यो नही !

रमेश— [**खिन्न स्वरसे**] ऊँह जाने भी दो मीरा ! जाओ, मोहन !

[**मोहन जाता है**]

मीरा— वैठिए मास्साब !

[**दोनों बैठते है**]

मीरा— रातको, मास्साव, उर्म्मिला जीजीके यहाँ दावत थी, सो सवाल पूरे नही कर पायी ।

रमेश— [**उसी स्वरमें**] हूँ ! अच्छा, हिन्दीकी किताब निकालो । पढो ।

मीरा— [**पढ़ती है**] 'प्राचीन कालमे भारतीय महिलाएँ बहुत वीर होती थी । रानी दुर्गावतीका नाम तुमने सुना होगा । रानी लक्ष्मीबाई

ने अंग्रेज़ोके विरुद्ध जिस वीरता और साहसके साथ युद्ध किया वह इतिहासमे . '

रमेश— अच्छा इसे रहने दो। पहले डिक्टेशन लिखो ।

मीरा— वोलिए ।

रमेश— [**मानो जागकर**] ऐ हाँ, लिखो। कालेज मे .

मीरा— [**लिखती हुई**] कालेजमे

रमेश— लडकियोको पढानेसे कोई लाभ नही ।

मीरा— जरा धीरे मास्साव!

रमेश— [**एकाएक खड़े होकर**] आज मेरा मन ठीक नही है मीरा! कल पढना ।

मीरा— क्यो, क्या हुआ मास्साव!

रमेश— नही,नही, सो कुछ नही । [**रुककर**] एक गिलास पानी!

मीरा— मै अभी लाई!

रमेश— और देखो, जरा अपनी जीजीसे कहना कि मास्साव बुलाते है ।

मीरा— जी !

[**असमंजसका संगीत**]

शीला— आपने बुलाया!

रमेश— जी, दो मिनट बैठ सकेगी ?

शीला— हाँ, हाँ, अवश्य!

रमेश— [**धीरे-धीरे, अटक-अटककर**] देखिए, आपको कष्ट पहुँचाना मेरा उद्देश्य नही है। वैसे मै स्वय ही जानता हूँ और तुम भी जानती हो कि मै जानता हूँ। पर एक वार पूरी तौरपर आश्वस्त होना चाहता हूँ। इसके जाननेकी मुझे आवश्यकता आ पडी है, अन्यथा तुम्हें इस विषम परिस्थितिमे न डालता। [**रुककर**] एक वात पूछता हूँ, ठीक उत्तर दोगी ?

शीला— जी हाँ, भला आपसे क्या छिपाऊँगी!

रमेश— मुझे सचमुच प्यार करती है ?

शीला— [**एक क्षण उसके झुके हुए सरकी ओर देखती है, फिर एकाएक ठहाका मारकर हँस पड़ती है। रमेश चौंकता है, और उसकी ओर देखता है**] सच रमेश बाबू, आपने तो लडकियोको भी मात कर दिया!

रमेश— [**घबड़ाया-सा**] मै समझा नही!

शीला— खेल-खेलकी . मन बहलावकी बातोको आप इतनी गम्भीरतासे लेते है, यह मुझे नही मालूम था। आप सचमुच बडे सीधे है।

रमेश— तो आप तो तुम मुझे प्यार नही करती?

शीला— [**शान्त, जैसे कोई जज अपना निर्णय पढ रहा हो**] मैं प्यारमे विश्वास ही नही करती।

रमेश— [**उदास भावसे**] जी, [**हारकी हँसी**] मै भी कितना पागल था! [**शीलासे**] अच्छी बात है, तो चलूँ नमस्ते!

शीला— नमस्ते! [**मुसकराकर**] देखिए, बुरा न मानियेगा!

[**रमेश जाता है। मीरा आती है**]

मीरा— जीजी! . मास्साब गये?

शीला— हाँ ...क्यो?

मीरा— पानी मँगाया था

शीला— तो इतनी देरमे।. भोदू!

मीरा— [**पलटकर**] भोदू, भोदू... एक तो गिलास फूट गया, और ऊपरसे भोदू।

शीला— अच्छा हुआ ऐ गिलास फोड दिया! चल, माँसे कहती हूँ!

मीरा— कह दो, मैने पहले ही कह दिया है!

[**मीरा जाती है। मोहन आता है**]

मोहन— शीला दीदी, यह ख़त उर्म्मिला दीदीका नौकर दे गया है।

शीला— ला देखूँ क्या लिखा है!

शीला— [**पढ़ती हुई**] आजका अख़बार देखा? मीराके मास्टर साहब आई० ए० एस० हो गये। बधाई।

शीला— **[सोचती हुई]** आई० ए० एस० मीराके मास्टर साहब आई० ए० एस० हो गये आजका अखबार **[दौड़कर बाहर जाती है, और अखबार लेकर लौटती है]**

शीला— **[अखबार टेबिल पर बिछाकर]** कहाँ है, कहाँ है ऐ . .हूँ, यह है रमेशचन्द्र कुलश्रेष्ठ । **[एक क्षण कुछ सोचती है, फिर पागल-सी जोरसे]** मोहन, अरे मोहन ! मोहन !!

[मोहन आता है]

मोहन— क्या दीदी !

शीला— **[आपेमें नही है]** देख, साइकिल लेकर चला जा, रास्तेमे ही मिल जायेंगे मीराके मास्साब, उन्हे यहाँ बुला ला । अभी ज्यादा दूर नही गये होगे । कहना, दीदी बुलाती है । जा, जल्दी जा ।

[मोहन जाता है]

[असमजस और प्रतीक्षाका सगीत]

रमेश— आपने बुलाया ?

शीला— **[अति विनम्र भावसे]** जी, माफ कीजिए, बडा कष्ट दिया ।

रमेश— नही, नही, कष्ट क्या ! मै तो दरवाजे पर ही मीरासे बाते कर रहा था ।

शीला— ओ ! बैठिए ! **[ज़ोरसे]** अरे मोहन ! दो प्याला चाय !!

रमेश— नही, नही, चाय-वाय रहने दीजिए । कहिए ?

शीला— **[इधर-उधर देखती है, मानो सोचती है कि कैसे शुरू करूँ]** आप इतने सीधे क्यो है ?

रमेश— **[खोया-सा]** क्या ?

शीला— देखती हूँ, आपका मनोविज्ञानका सारा अध्ययन बिलकुल बेकार गया है । मेरा अनुमान था कि आप बिना कहे ही समझ सकेंगे । मै यह बिलकुल भूल गई थी कि आप इतने सरल है कि कि फिर जब सब कुछ इतना स्पष्ट था तो पूछना और असमजसमे

डाल देता है। [**स्वरको और भी कोमल बनाकर**] आपको नही मालूम, हम लोगोको कितनी लज्जा

रमेश— [**जिज्ञासु भावसे**] यानी आप मुझे प्यार करती है ?

शीला— [**एक छोटी सी-आह भर कर**] इम्मैन्सली !

रमेश— ओ ! [**सोचमें डूबकर सर झुका लेता है**]

शीला— सोचा कि अब इतने दिनोकी बातोके बाद भी आपने पूछनेकी आवश्यकता समझी तो कही मेरे उस उत्तरसे भ्रममे न पड जाये। इसलिए सोचा कि निर्लज्ज होना पडे तो सही आपसे क्यो छिपाऊँ ! [**रुक कर**] पर है कमाल। वैसे आप ऐसी-ऐसी सूक्ष्म भावोकी कविताएँ लिखते है कि बस। . क्या है वह आपकी पक्ति '**अपनी व्रीड़ामें युग-युगकी मनुहार लिये**' [**रुककर**] अरे। आप सोच क्या रहे हैं ? [**धीमे-धीमे**] धन की मुझे परवाह नही है . और माता-पिताकी ? सो क्या है आप मुझे इतनी परतत्र समझते हैं ?

रमेश— [**चौंककर**] क्या ?

शीला— [**दबे स्वरमें**] मेरा प्यार युग-युग तक अमर रहेगा. .उसके आगे

रमेश— नही शीला, तुमने मुझे गलत समझा ! बात यह है [**अटकता है**] बात यह है [**अटकता है**] कि मैं तुम्हारे माता-पिताकी नही, अपने माता-पिताकी बात कर रहा था।

शीला— क्या मतलब ?

रमेश— एक सज्जन मेरे व्याहके लिए पिताजीके पीछे पड गये हैं, बुरी तरह। बीस हजार तक देनेको तैयार हैं। मैंने अभी तक उनको कोई अन्तिम उत्तर नही दिया है। एक सप्ताहसे मेरे मनमें लगातार भीषण सघर्ष चल रहा है। एक ओर तुम्हारे प्रति मेरा उत्कट प्यार, और दूसरी ओर माता-पिताकी गरीबी . . मुझे लगता है कि मैं उनके सुखको अपने स्वार्थ पर लुटाये दे रहा हूँ।

शीला— लेकिन अब तो आप गरीब नही रहे, फिर चिन्ता ही क्या ?

रमेश— [**फीकी हँसी हँसकर**] मजाक करती हो, शीला !

शीला— मजाक ! [**प्रसन्न स्वरमें**] अरे क्या आपको अभी तक नही पता ! आप तो आई० ए० एस० हो गये हैं रमेश बाबू !. यह देखिये यह अखबार !

रमेश— [**आश्चर्य से**] अरे सच । कहाँ है, देखूँ ? [**अखबार देखता हुआ संतोषकी साँस लेकर**] हे भगवान् ! आखिर तूने मेरी सुन ली । लेकिन हूँ [**सोचता है। फिर एकदम स्वर बदलकर व्यग्य से**] अच्छा, तो यह बात थी ! अब मैं समझा कि आपने क्यो मुझे दुबारा बुलाकर इतनी बातें की ।

शीला— आप गलत समझ रहे हैं ।

रमेश— [**कड़े और व्यंग्य-भरे स्वरमे, रूखी हँसी हँसते हुए**] अब तुम मुझे नही बहका सकती शीला! मैं मन ही मन इतनी देरसे आश्चर्य कर रहा था कि अचानक तुम बदल कैसे गई ! अब समझमे आया कि तुम्हारा युग-युग वाला प्यार कैसा था !

[**जाता है**]

शीला— रमेश बाबू ! रमेश बाबू । सुनिए तो । . .. कही वे लोग भी तो बीस हजार .

[**स्वरान्त**]

●

परछाईं

पात्र :

शीला

नर्स

नरेश

मोहन

अवधि :

१५ मिनट

परछाईं

शीला— [पत्र पढते हुए] पूज्य स्वामी जी, सादर चरण—स्पर्श । —बडे कष्टमे यह पत्र आपको लिख रही हूँ । वैसे, कुछ दिन हुए, शायद दसेक दिन, जब आपको एक पत्र लिखा था । पर मैं उसे डाल नही पाई और और किसीने डाल देनेकी कृपा नही की । इसलिए वह पडा ही रहा । अब कल होश आने पर वह मैंने डाकमे छुडवा दिया है । केवल इसलिए कि जब वह आपके लिए ही लिखा गया था तो आपके करकमलो तक पहुँचनेसे क्यो वचित रहे । यो, उसका रस सूख चुका है क्योकि वह तबका लिखा हुआ है जब मैं, मैं थी, आजकी तरह एक परछाई नही, वरन् जीवित, उद्दाम, अनिरुद्ध प्रवाहिनीके समान बाधाओसे मरण पर्यन्त जूझने की साध रखनेवाली नारी थी ।

नर्स — [आते हुए] यह लीजिए—यू डी कलौनकी पट्टी । अरे आप फिर यह लिखा-पढी कर रही है ? डाक्टरने कितनी सख्त मनाही की है, आपको मालूम है ?

शीला— डाक्टरका तो काम ही मनाही करना है लिली, लेकिन मना करनेसे ही क्या मन मान जाता है ?

नर्स — मानता तो नही है !

शीला — फिर ? पगली !

नर्स — लेकिन मेम साहब, आप कितनी कमजोर है, अगर कही हालत विगड गयी तो..

शीला — देखो नर्स ! अगर यह फर्जअदायी न भी करोगी तो भी तुम्हारे पेमेण्टमे कोई कमी न होगी, समझी ?

नर्स — जी !

शीला— और हाँ, वह खत डाल दिया था ?

नर्स — जी हाँ, कल ही, ..

शीला— खुद डाला था, या

नर्स — जी नही, मैं शामको छुट्टी पाकर सिविल लाइन्स गई थी तब मैंने खुद ही डाल दिया था ।

शीला— सिविल लाइन्स क्या काम था ?

नर्स — काम तो खास कुछ नही था, यो ही चली गयी थी ज़रा घूमने ।

शीला— तुम्हे घूमना अच्छा लगता है ?

नर्स — बहुत। मै अक्सर घूमने जाती हूँ। खुली हवा हो, लम्बी दूर तक फैली सडक। और घूमते सूरजकी किरणोमे परछाइयोका खेल, जो मानो धीरे-धीरे चारो ओरसे घिर आती है, और मुझे अपनेमे समा लेती है। मेरा तो जी करता है, खो जाऊँ उनमे।

शीला— तुम अकेली ही जाती हो ?

नर्स — जी। **[धीरे-धीरे अर्थ-भरे ढंगसे हँसती है]**

शीला— **[अर्थ समझकर हँसीमे साथ देती है]** मनका मीत साथ हो तो उन परछाइयोमे कौन नही खो जाना चाहेगा पगली ? लेकिन लिली, जीवनमे ऐसा भी तो होता है जब सबका साथ बिछुड जाता है, और सिर्फ परछाइयोका यह घेरा बच रहता है। तब जानती हो क्या होता है ?

नर्स — जानती हूँ।

शीला— क्या जानती हो ?

नर्स — ऐं ! **[टालनेके उद्देश्यसे]** मै आपका दूध लाना तो भूल ही गयी। अभी आती हूँ। **[गई]**

शीला— अच्छी लडकी है। ठीक मेरी तरह। **[रुककर]** नही, भगवान् न करे मेरी तरह हो ! **[फिर पत्र पढ़ते हुए]** और अब वह पत्र आपके पास पहुँचने ही वाला है। उसे पढकर यदि आपको क्रोध आये तो यह समझ कर क्षमा कर दे कि सहनशक्ति हरेकके पास

बरावर नही रहती, यदि घृणा होने लगे तो यह सोचकर क्षमा कर दे कि मेरी उमगोका गला ऐसे समय घोटा गया था कि मैं स्वय इस जीवनसे घृणा करने लग गयी थी, और यदि दया आये तो यह सोचकर क्षमा कर दे कि मेरा कष्ट वढानेसे किसीको कोई लाभ नही, क्योकि मेरा यह दूसरा पत्र ही मेरे पहले पत्रका सबसे वडा उपहास है। इसको पाकर आप भी एक प्रकारसे निश्चिन्त हो जायँगे, सोचेंगे शायद मैंने अपना इरादा वदल दिया। लेकिन स्वामी जी! काश यही होता। काश मुझमे साहसकी कमी होती, अपने आपको कायर कहकर धिक्कार सकती! तब कमसे कम मैं किसी औरको तो दोषी न ठहराती, कमसे कम अपने मनको यह कहकर तो समझा सकती थी कि जो लोग कुछ कर नही सकते उन्हे जिन्दगीमे सुख और सफलताके दर्शन नही होते। पर नही, यह सतोष भी मेरे साथ क्यो रहता? इसीलिए मैं अपने पिछले पत्रकी गर्वोक्ति-भरी घोषणाको व्यर्थ करती हुई जीवित तो हूँ, पर अपनी ओरसे मैं मृत्युकी शरण ले चुकी हूँ।

नर्स — **[पास आते हुए]** फिर वही मैं कहती हूँ, यह आप कर क्या रही हैं? छोडिए इसे, यह लीजिए दूध। और हाँ, नरेश बाबू आये हैं।

शीला— तो साथ लिवा लाती! जा, भेज दे।

[दूध पीती है]

नरेश— [धीमे] हलो!

शीला— आओ, बैठो। क्या खबर है? [रुककर] अरे, यह देख क्या रहे हो?

नरेश— देख रहा हूँ तुम्हारे इस नये जीवनको।

शीला— नया तो शायद है, पर जीवन नही है। समझे नरेश! मुझे मौत

भी मिली तो सबसे अलग तरह की। कैसा विचित्र भाग्य है मेरा, जो पहुँच तो हर जगह जाता है, पर साथ कही नही देता।

नरेश— आप तो न जाने कैसी बाते करती है। अब तो अपनेपर दया कीजिए।

शीला— क्यो करूँ दया ? तुम लोगोने क्या मुझपर कुछ कम दया की है ? और फिर दया भी क्या कुछ करने लायक चीज है ? उससे तो घृणा ही अच्छी है।

नरेश— कह नही सकता, यह किसका दोप हे कि तुम मेरी वात समझ ही नही पाती हो। हो सकता है, मैं समझा न पाता होऊँ। पर तुम्ही वताओ, तुमको यो मिटते देखकर और कव तक चुप रहूँ।

शीला— [मंद मुसकराहटके साथ] लेकिन और करोगे भी क्या ?

नरेश— [बडे तपाकसे] जो तुम कहो।

शीला— मैं ? यह अच्छी कही। मैं क्यो कहने लगी ?

नरेश— [भावपूर्ण स्वरसे] क्योकि यह तुम्हारा अधिकार है।

शीला— मेरा अधिकार तो खत्म हो चुका है। वह वचा होता तो मेरी जिन्दगी भी वची रहती।

नरेश— क्या यह वहुत जरूरी है कि तुम इस तरहकी वाते करो ? वल्कि, क्या यह अच्छा न हो कि तुम यह कायरता छोडकर थोडी निर्ममता और साहससे काम लो ?

शीला— धन्य है पुरुपकी आँखे ! प्राण देना तुम्हे कायरता लगता है ?

नरेश— प्राण देना सचमुच बडे साहसका काम है, यह मैं मानता हूँ, पर स्लीपिग टेव्लेट्स खाकर सो जाना वीरता नही है, यह अधिकार दे बैठना है।

शीला— कैसा अधिकार ?

नरेश— जीनेका अधिकार, जीवनसे सुख पानेका अधिकार। जिस रास्ते अपने हाथसे यह अधिकार जाता हो वह रास्ता कभी भी सही रास्ता नही हो सकता। यह मैं पहले भी कह चुका हूँ।

शीला— तो फिर उसको दुहराये विना क्या काम नही चलेगा ?

नरेश — चलता तो दुहराता ही क्यो ?

शीला— और यदि बदलेमे मै भी अपना उत्तर दुहरा दू तो ?

नरेश — कौन-सा उत्तर !

शीला— यही नरेश बाबू, कि आपके तर्कके पीछे आपका विश्वास नही है। क्योकि आप जो कुछ भी कहते है उसके पीछे मुझे आपकी कोई ऐसी योजना छिपी लगती है जिसकी स्वीकृति मैने नही दी है।

नरेश — मेरी एक योजना है इससे मुझे इनकार नही है। और उसे यदि तुम स्वीकार ही कर लेती तो फिर झगडा ही क्या था ? पर क्या मै यह आशा भी छोड दूँ कि शायद एक दिन वह शुभ मुहूर्त आये जब

शीला— जरूर छोड दीजिए, नरेश बाबू ! वैसे छोड देनेमे तकलीफ़ होती हो तो मेरे निवेदनपर छोड दीजिए।

नरेश — आखिर क्यो ?

शीला— इसलिए कि जिस मुहूर्त्तकी बात आप कर रहे है वह नारीके जीवनमे केवल एक बार ही आता है। मेरे जीवनमे भी वह आ चुका है। यह दूसरी बात है कि उसपर किसी अशुभ अस्तित्वकी परछाईं ऐसी पडी कि वह दब गया। पर उसकी शिकायत तो मैने आपसे कभी नही की।

नरेश — लेकिन उसकी कमीका अनुभव तो आपने किया? मै उसी कमीको मिटाना चाहता था।

शीला— [हँसकर] उसके मिटनेमे ही मेरा मिटना शामिल है? नही नरेश बाबू, आपकी सहायता मुझे सधन्यवाद वापिस करनी पडेगी।

नरेश — लेकिन आप उसे सहायता समझती ही क्यो है ?

शीला— तो क्या समझूँ ?

नरेश — कुछ मत समझिए, केवल स्वीकार कीजिए! समझनेका काम मुझ-

पर छोड दीजिए। और जिनको समझना होगा उन्हे भी मै ही समझ लूँगा।

शीला— वाह वाह, ऐसी तानाशाही। आपकी यह योजना कमाल है जिसमे मेरी समझकी भी खैर नही ?

नरेश— तो फिर क्या करूँ, आप ही बताइए।

शीला— कुछ भी करना आपको जरूरी क्यो लगता है ?

नरेश — इसलिए कि मै अब आपको इस प्रकार धीरे-धीरे डूबते नही देखना चाहता, साँझकी धूपकी तरह [सहसा मोहाविष्ट-सा] आप आप तुम नही जानती शीला, तुम्हारी इस स्थितिपर मेरा मन कितना रोता है ? नारी अपने ऊपर इतना अत्याचार कर सकती है यह मै कल्पना भी नही कर सकता था।

शीला— लेकिन मैने अत्याचार किया ही कहाँ है। बल्कि मेरी तो सिर्फ यही एक कोशिश रही है कि कही किसी पर अत्याचार न कर बैठूँ।

नरेश— जहर खाकर क्या तुमने हम सबपर अत्याचार नही किया ? मान लो तुम न रहती ?

शीला— लेकिन मै मरी कहाँ ! फिर माननेका सवाल ही कहाँ आता है ?

नरेश— पर मै तुम्हे मरने ही क्यो देता ? जानपर खेलकर भी तुम्हे बचाता।

शीला— [मुसकराते हुए] अच्छा, यह बात है ?

नरेश— बिल्कुल यही बात है। जानती हो, ज्यो ही मुझे खबर लगी, मै सीधे दौडा आया। देखा मोहन घुमड-घुमड कर रो रहा है। आखिर पचास टेब्लेट्सके बाद उम्मीद भी क्या होती ? लेकिन मेरा मन नही माना। मैने मोहनके कधे पर हाथ रखकर पूरे बल से कहा

शीला— क्या कहा ?

नरेश— मैने कहा दुख मत करो मोहन। शीला मरेगी नही। वह जीवित रहेगी। उसे जीवित रहना पडेगा।

शीला— सो कैसे ?

नरेश— मोहनने भी यही पूछा था। तब मैंने यही कहा था मैं डाक्टर या ज्योतिषी तो हूँ नही। उन लोगोकी बाते वे जाने, मैं तो इतना ही जानता हूँ कि शीलाने ऐसा कुछ नही किया जिसके लिए उसे मृत्युकी शरण लेनी पडी। खिलते-खिलते फूल अचानक कैसे मुरझा सकता है ?

शीला— फिर ?

नरेश— फिर क्या ? तुम पूरे सात दिन तक बेहोश पडी रही। सब लोग कई-कई बार रो-रोकर चुप हो गये। पर मैं जानता था कि यह नही होगा। आखिर सातवे दिन तुमने आँखे खोल दी। और आज तुम मेरे सामने बैठी मुसकरा रही हो। समझी ? मैंने अपने प्राणोके बलसे तुम्हे जीवनका दान दिया है शीला ! तुम्हे इस तरह लौटा देनेमे विधाताका जरूर कोई न कोई सकेत है। मैं नही देख सकता कि अपने इस कीमती जीवनको तुम घुलनेमे बिता दो।

शीला— [हँसते हुए] लेकिन मेरे साहसी वीर ! यह सब तो तुमने अपने लिए ही किया न ? अपनी कामनाकी पूर्तिके लिए ! मैं क्या करूँ कि मेरे लिए उसका कोई मूल्य नही है ? मैं मर गयी होती तो छुट्टी मिल जाती। पर तुम लोग नही माने क्योकि तुम लोग शायद छुट्टी नही चाहते। लेकिन मैं तो छुट्टी ले चुकी। सो मैं हूं तो जरूर, पर मेरे होनेको लेकर आप दुखी न हो नरेश बाबू, उससे कुछ हाथ नही आयेगा।

नरेश— तो क्या मैं नाटकके दर्शककी भाँति बैठा-बैठा स्टेज पर यह ट्रेजैडी होते देखता रहूँ ?

शीला— नही नही, नाटक पसन्द न आये तो आप थियेटर हॉलसे उठकर बाहर भी जा सकते है। पर शोर करके अभिनेताओका उत्साह क्यो तोडते हैं।

नर्स— [कुछ दूरसे] माफ कीजिए नरेश बाबू ! बहुत देर हुई है अब आप जाये । इनको ज्यादा बोलनेकी मनाही है ।

नरेश—[साँस लेकर] अच्छी बात है । तो चलूँ ।

शीला—[प्रसन्न मुद्रामे] अच्छा । और हाँ, नर्स !

नर्स— जी मेम साहब !

शीला—यह पश्चिमकी खिडकी तो खोल दो जरा शाम हो रही है, जरा मै भी तो देखूँ तुम्हारी परछाइयोका खेल !

नर्स— जी ।

शीला—[फिर पत्र पढते हुए] अब स्वामीजी आप ही बताये, मेरे लिए जीवन या मृत्यु किसीका भी कौन-सा पथ खुला है ? आपने मुझे इतनी ज्ञानकी बाते बताई है, अपने अनुभव और दर्शनका निचोड पिलाया है, पर क्या मेरी इस समस्याका कोई भी समाधान हो सकता है ? मन चाहता है कि कहूँ कि मै एक बार फिर मरनेकी चेष्टा करूँगी, पर यह भी झूठ बोलना ही होगा । क्योकि मृत्युके लिए भी अब मुझे कोई प्रेरणा नही मिलती । मेरा निवेदन है कि एकबार अपने चिन्तन-सागर को और मथे, शायद मेरे लिए कोई मुक्ति-बिन्दु मिल जाय । **आपकी अभागिनी, शीला**

मोहन—[पास आते हुए] अरे ! मै तो समझा, सो रही होगी, इसीलिए जरा काम देखता रहा । [रुककर] यह क्या कर रही हो ?

शीला—खत लिख रही हूँ ।

मोहन—किसको ?

शीला—स्वामीजीको !

मोहन—फिर वही खत ! मै कह चुका हूँ तुम्हे उनके पास कोई खत नही भेजने दूँगा । उन्होने तो तुम्हारा दिमाग फेर दिया है जो यह उत्पात कर बैठी । कोई जरूरत नही खत-वत लिखनेकी ।

शीला—[चौककर, आहत-सी होकर देखती है । फिर बुझे स्वरमें] सुनो !

मोहन—कहो ।

शीला—एक बात सच-सच बताओगे ?

मोहन—हाँ, हाँ ।

शीला—छिपाओगे तो नही ? झूठ तो न बोलोगे !

मोहन—बिल्कुल नही —क्यो ?

शीला—क्या तुम्हारा यह पक्का विश्वास है कि स्वामीजीने ही मेरा दिमाग फेर दिया है ?

मोहन—और नही तो क्या ! उनसे मिलनेके पहले तुम बिलकुल ठीक थी। हँसती थी, बोलती थी, घूमती-फिरती थी, मजेमे तो रहती थी ! लेकिन जबसे तुम स्वामीजीसे मिली, तभीसे गुमसुम रहने लगी, खाना-पीना छोड बैठी, और आखिरमे ऐसा उत्पात कर बैठी कि सारा घर बँधता फिरता ।

शीला—[**झुंझलाहट और घृणासे भरकर**] इसके बाद कुछ कहनेको मन तो नही करता पर न कहनेसे तुम्हारा पाप बढ जायेगा। [**रुककर : जैसे कोई जज अपना निर्णय पढ़ रहा हो ।**] तो सुनो, स्वामीजीने मुझे केवल तुम्हारा आदर करना ही सिखाया है। मै क्या करने वाली हूँ, इसकी उन्हे सूचना तक न थी ।

मोहन—फिर उनसे मिलनेके बाद तुम उदास क्यो रहने लगी !

शीला—पहले मै हँस-बोल लेती थी क्योकि मन ही मन सोचती थी कि कभी न कभी तुम्हारे इस झूठके घेरेसे निकल भागूँगी। मुझे पहले मालूम होता कि तुम्हारा विवाह हो चुका है, तो मै तुम्हारी ओर आँख भी न उठाती। पर वह बात तो बीत गयी। तुम कायरो-की तरह मुझसे यह सत्य छिपाये रहे। बादमे मैने सोचा कि मै अपना जीवन फिरसे शुरू करूँगी। इसीलिए भीतर ही भीतर उपाय सोचती रही और ऊपरसे हर्षोत्सवका परदा डाले रही। पर स्वामीजीने बताया कि यह परदा गलत है, यही नही यह कामना भी गलत है। नारीका जीवन एकबार ही प्रारम्भ होता है। और तभी मै समझ गयी कि मृत्यु ही मेरा एकमात्र छुटकारा है ।

मोहन—[घबराकर] तो क्या तो क्या .

शीला—[दृढ़तासे] घबराओ मत ! दुबारा मरनेकी कोशिश करके मै तुम्हारे घर भरको बँधवाऊँगी नही । क्योकि वह कोशिश भी व्यर्थ है । मेरा जीवन तो एक परछाई है जो तभी मिट सकती है जब उसको रूप देनेवाला आलोक मिट जाय ।

[स्वरान्त]

●

दृष्टि-दोष

पात्र :

वीरेन्द्र

रमेश

महिला

अवधि :

१० मिनट

दृष्टि-दोष

[सीढ़ियो पर किसीके पैरोंकी आहट । फिर दरवाजे पर हल्की खटखटाहट]

वीरेन्द्र—रमेश बाबू ! रमेश बाबू !

रमेश—[**भीतरसे**] कौन ? कौन साहब है ?

वीरेन्द्र—मैंने कहा, जरा खोलिए रमेश बाबू !

रमेश—[**दरवाजा खोलते हुए**] अक्खाह, आप है वीरेन्द्र बाबू ! आज कैसे रास्ता भूल पडे ?

वीरेन्द्र—मैंने सोचा, बहुत दिनसे आपके यहाँ आया नही, तो

रमेश— मेरे अहोभाग्य ! मै तो सोचता था, आप भूल ही गये । नही तो भला इतने पास रहते हुए भी कभी खबर न ली ! इसी बगलवाली गलीमे ही तो घर लिया है आपने ?

वीरेन्द्र—भई, माफ करना, कभी-कभी ऐसा होता है कि जिस कामको हम मनसे करना चाहते है वही एक न एक कारणसे टलता रहता है । जबसे इधर मकान शिफ्ट किया तबसे रोज ही आनेकी कोशिश करता था, पर मौका ही न मिला ।

रमेश— हाँ, भई, गरीबोके यहाँ कौन आता है !

वीरेन्द्र—अरे नही ! यह बात नही । लेकिन यार इधर तुम भी तो दिखायी न पडे । पहले तो करीब-करीब रोज ही मिल जाते थे । कभी पार्कमे, कभी बुकहाउस मे !

रमेश— क्यो, दफ्तरमे तो रोज मिलते ही है ।

वीरेन्द्र—तुम भी बस । अरे, दफ्तरमे भला आदमी आदमी रहता है ? कागज, घटी, यस सर, नो सर कुछ न पूछो । सर पर साहब सवार हो तो मेरी तो सिट्टी-पिट्टी ही गुम हो जाती है । पार्कमे

आया करो। खूब चहल-पहल रहती है। मै तो भई, दफ्तरसे लौटकर सीधा पार्क चला जाता हूँ। जब रात हो जाती है, तभी लौटता हूँ। तुम क्या शामको निकलते ही नही ?

रमेश— कुछ मन ही नही करता यही पडे-पडे सूरजको डूबते देखता रहता हूँ। घूमनेसे तो और थकान आ जाती है।

वीरेन्द्र—यह कबसे ? पहले तो तुम खूब घूमा करते थे।

रमेश— हाँ ाँ ाँ । मौके-मौकेकी बात है।

वीरेन्द्र—कैसा मौका ?

रमेश— कुछ नही . यो ही....

वीरेन्द्र—हमसे छिपाते हो ? यह मुसकराहट तो कह रही है कि कुछ और ही मामला है।

रमेश— अरे नही। वह सब कुछ नही, खाली तुम्हारा ख्याल है।

वीरेन्द्र—देखो यार, उडो मत, दोस्तोसे क्या पर्दा ? क्यो उधर क्या देख रहे हो, बताओ न !

रमेश— क्या बताऊँ ? कुछ हो तो बताऊँ, तुम तो यो ही कुलाबे भिडाते हो।

वीरेन्द्र—अच्छा जी, यह बात। लेकिन ये उडती नजरे तो कुछ और ही बता रही है।

रमेश— क्या बता रही है ?

वीरेन्द्र—ये बता रही है कि इन्हे उधर सामने किसीकी तलाश है। अब, सच-सच कह डालो, यार, थोडा हमे भी एन्जॉय करने दो। कही .

रमेश— चुप शी वह देखो।

वीरेन्द्र—वाह, वाह, मानो कोई बिजली-सी चमककर चली गई। तो ये ठाठ है हुजूरके ? तभी तो मै कहता था कि आखिर आजकल निकलते क्यो नही ? लेकिन भई मान गये ! तुम सचमुच किस्मत

वाले हो। ... हमे तो आज तक कभी रोमास नसीब न हुआ। कभी बातचीत भी हुई या नही ?

रमेश— तुम भी यार कमाल करते हो भला! ऐसी बात क्या कही जाती है ? यही क्या कम है कि बीच-बीचमे दर्शन देती रहती है!

वीरेन्द्र—जो हो, तुम्हे प्यार जरूर करती है।

रमेश— तुम्हे कैसे मालूम ?

वीरेन्द्र—तुमने उसका चेहरा नही देखा ? यह हलकी गुलाबी लालिमा, ये अधखुली आँखे, यह सकोच-भरी चाल, और फिर तुम्हारे आँख उठाते ही भाग जाना, ये आखिर प्यारके लक्षण नही है तो क्या है ?

रमेश— ठीकसे कहना मुश्किल है भई! कभी-कभी तो मुझे भी ऐसा लगता है। पर कभी-कभी उनकी मुद्रा देखकर डर भी लगने लगता है।

वीरेन्द्र—बडे कच्चे खिलाडी हो यार! ऐसे मौकेपर डरनेसे तो सारा मजा किरकिरा हो जाता है।

रमेश— जो भी हो, हम तो इतने हीसे सतुष्ट है। हमे और कुछ नही चाहिए।

वीरेन्द्र—लेकिन फिर मामला आगे कैसे बढेगा ?

रमेश— बढानेकी क्या जरूरत है ?

वीरेन्द्र—क्यो, तुम क्या निरे घोचू हो! भला ऐसी औपौर्चुनिटी कब मिलेगी ? एक सुन्दरी जो अपने परिवारसे असन्तुष्ट है

रमेश— वह अपने परिवारसे असन्तुष्ट है, यह तुम कैसे जानते हो ?

वीरेन्द्र—अरे! इसको जाननेके लिए क्या डिग्री लेनी होती है ? मै तो एक झलकमे ही ताड लेता हूँ।

रमेश— सच ?

वीरेन्द्र—और नही तो क्या ? लेकिन यार एक बात बताओ, कभी उसके पतिसे सामना नही हुआ ?

रमेश— यही तो मैं अक्सर सोचा करता हूँ। उनका पति या तो कोई ईडियट है या फिर लापरवाह। शामको तो कभी घरपर रहता

ही नही । सवेरे भी शायद ही कभी ऊपर आता हो । जब आता भी है तो मेरे पैरके एक इशारेसे ही यह दरवाजा बन्द हो जाता है । उसका देखना तो दूर रहा, मैंने भी उसे आजतक नही देखा ।

वीरेन्द्र—और फिर भी आगे बढनेसे डरते हो ? क्या बताऊँ भई मुझे तो कभी मौका ही नही मिला, वरना तुम्हे दिखा देता,रोमास क्या चीज है । तुम तो यार निरे दब्बू ही निकले ।

रमेश— उसमे क्या है ? तुम रोज यहाँ आ जाया करो । देखे क्या गुल खिलाते हो ?

वीरेन्द्र— यह बात है ? अगर चैलेंज करते हो तो मै आज ही एक हाथ दिखा सकता हूँ ।

रमेश— पक्की रही । हम भी तो देखे तुम्हारे हौसले । लो, वह आ गई , कोई किताब पढ रही है शायद !

वीरेन्द्र—बस, काम बन गया । आओ, मेरे साथ ।

रमेश— ना बाबा ! मै यही ठीक हूँ ।

वीरेन्द्र— अरे आओ भी मेरे मिट्टीके शेर ! मेरे पीछे-पीछे रहना, मेरे होते तुम्हे किसका डर ?

रमेश— तो हाथ तो छोड दो यार !

वीरेन्द्र— अब नखरे मत करो, नहीं तो मौका हाथसे निकल जायेगा ।

[**दोनो बढकर झरोखे तक जाते है । वीरेन्द्र खाँसता है, रमेश हडबडाने लगता है ।**]

वीरेन्द्र— मैंने कहा, देवी जी नमस्कार !

महिला—[**अपने झरोखे से**] नमस्ते जी !

वीरेन्द्र— ये मेरे दोस्त आपसे कुछ कहना चाहते है ।

महिला—शौकसे ।

रमेश— [**धीमे**] यह क्या बकवास है ? मुझको क्यो घसीटते हो ?

वीरेन्द्र— पूछ रहे है, आपके हस्बैण्ड कहाँ है ?

महिला— जी, वह तो अपने एक दोस्तसे मिलने गये है ।

रमेश—[**धीमे**] हद हो गयी वीरेन्द्र, मैं इसे बेहूदगी समझता हूँ ।

वीरेन्द्र—कह रहे हैं, क्या आप चाय नही पिलायेंगी ?

महिला—जरूर, जरूर ! इसमे भला ऐसे संकोचकी क्या जरूरत है ? कुछ बिस्कुट वगैरह ?

वीरेन्द्र—हो तो और भी अच्छा !

महिला—अभी लीजिए । [**महिला चली जाती है**]

रमेश—उफ, यार ! तुम्हारे पास क्या कोई जादू है ? मैं महीने भरसे सोच रहा हूँ, और आजतक नजर मिलानेकी हिम्मत नही पडी, और तुम चायका आर्डर तक दे बैठे ।

वीरेन्द्र—यह सब मर्दोका खेल है मित्रवर ! तुम्हारी तरह पसीना छूटने लगे तो हो लिया । बोलो, अब और क्या चाहते हो ! तुम्हारे घर बुलाऊँ ?

रमेश—ना बाबा, मेरी तो घिग्घी बँध जायगी । मुँहसे एक लफ्ज न निकल पायेगा ।

वीरेन्द्र—बस, इसी हिम्मत पर सारी दुनिया को भूलकर इस कमरेमे बन्द पडे रहते हो ? ख्याली दौडसे कुछ नही होता दोस्त, जिन्दगी साहस मॉगती है ।

रमेश—नही, यह अपने बसका नही, मेरे लिए तो दर्शन ही बहुत है ।

महिला—[**अपने झरोखेसे**] ये लीजिए चाय । और ये बिस्कुट । चीनी कम हो तो बता दीजिएगा ।

वीरेन्द्र—लो भई रमेश, देखो, इस चायमे रूपका अमृत है या नही । अरे ! शरमाओ नही, शरमाओ नही, आखिर ये भी अपनी ही हैं ।

रमेश—क्या बकते हो ?

वीरेन्द्र—अरे हॉ, विमला, मैं तुम्हें इन्ट्रोडयूस करना तो भूल ही गया । यह हैं मिस्टर रमेश जिनकी शिकायत कर-करके तुमने नाकमे दम कर दिया, और रमेश ! यह है मेरी वाइफ, विमला जी ।

रमेश—तुम्हारी वाइफ ?

वीरेन्द्र—हाँ भाई, जरा इन्हे समझा दो तुम इनसे कितना डरते हो। और यह कहती थी कि ऐसे देखता है जैसे निगल ही जायेगा।

रमेश— मुझे माफ कीजिएगा, मैं बडा लज्जित हूँ।

वीरेन्द्र— बस, बस, हो गया .. [सब हँसते हैं]

[स्वरान्त]

●

गीत की खोज

पात्र :

सेठ

कवि

जुही

मि० नाथ

गायक

गायिकाएँ

अवधि :

३० मिनट

गीत की खोज

[सहगान]

करती है धरती पुकार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।
टूटी है जीवन सितार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।
काली घटाए, लो, छाया अँधेरा
बिजली लगाती है पल-पल में फेरा
सहमा है सब संसार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।
करती है धरती पुकार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।
साँसो की बाती, तेल नहीं बाकी
प्राणो के दीपक पै चोटें हवा की
झोके है जैसे कटार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया।
करती है धरती पुकार
गीत मेरा, गीत मेरा खो गया!

कवि— कहो सेठ कैसा लगा ?

सेठ— [व्यग्यसे] कहो सेठ कैसा लगा! मै कहता हूँ तुम तीन हफ्तेसे मुझे उल्टा-सीधा समझाते रहे, और आखिरमे लिखकर लाये भी तो ये!

कवि— क्यो इसमे क्या खराबी है ?

सेठ— पूछते हो, क्या खराबी है ! मै कहता हूँ इसमे है ही क्या ? आखिर ये तुमने लिखा क्या है ?

कवि— आपने कहा था न कि एक थीम सौग लिख लाना ।

सेठ— तो क्या यह थीम सौग है ?

कवि— और नही तो क्या है सेठ ?

सेठ— यह थीम सौग नही है, यह वाहियात सौग है । समझे ! मै कहता हूँ, तुमसे कुछ नही होनेका ।

कवि— क्यो ?

सेठ— पूछते हो क्यो ? तुम बुद्धू हो यो !

कवि— देखो सेठ, मुझे बुद्धू न कहो ।

सेठ— क्यो न कहूँ ?

कवि— इसलिए कि मुझे अपनी आलोचना सुनना गवारा नही, चाहे वह सच्ची ही क्यो न हो !

सेठ— और मुझे अपनी फिल्म चौपट नही करनी है, चाहे कम्पनी ही क्यो न फेल हो जाय !

कवि— लेकिन कह नही सकता, आपको गीत पसन्द क्यो नही आया ? देखिए न, एक भी भद्दी बात नही है, एक भी सस्कृतका शब्द नही है, बडी चलती टच्यून है, और कही-कही तो मतलब भी बिलकुल साफ है । अब आप ही बतलाइए कि थीम सौगमे और क्या चाहिए ।

सेठ— चाहिए मेरा सिर ? तुमने कभी थीम सौग लिखा हो, तब तो समझो ! तुम्हे इतनी बार समझाया कि थीम सौग वह कहलाता है, वह कहलाता है जो .

कवि— पूरी फिल्ममे दो-तीन बार गाया जा सके ।

सेठ— बिलकुल ! अब यह दो-तीन बार कैसे गाया जायगा ?

कवि— क्यो, यह तो बिलकुल आसान है । एकबार शुरूमे गवा दीजिए, एक बार आखिरमे, और एकबार कही बीचमे .

सेठ— हाँ, हाँ, यह तो मैं भी समझता हूँ, पर शुरूमें इसे गायेगा कौन ?

कवि— अब यह तो कहानी देखकर ही बताया जा सकता है ।

सेठ— फिर वही फिजूलकी बात ! मैं कहता हूँ, मैंने तुमसे कितनी वार कहा कि थीम सौंग वह कहलाता है, वह कहलाता है .

कवि— जो हर कहानीमें फिट हो जाय ।

सेठ— बिलकुल ! अब बताओ यह कैसे फिट होगा !

कवि— आप करना चाहेंगे तो जरूर हो जायगा ।

सेठ— कैसे हो जायगा ?

कवि— जैसे आप चाहें । कोई मुश्किल काम तो है नही ।

सेठ— मैं कहता हूँ, अगर मुश्किल काम नही है, तो जरा करके बताओ ।

कवि— अभी लीजिए, हाँ, तो कहानी क्या है ? ओ ! आई एम सौरी . माफ कीजिएगा, चमडेकी जुबान, ज़रा फिसल गई । हाँ तो, यो समझिए कि अगर हिस्टौरिकल फिल्म है तो, किलेमें वद बागियोका गिरोह शुरूमें यह थीम सौंग गाता है ।

सेठ— लेकिन मैं हिस्टोरिकल फिल्म नही बनाना चाहता, समझे ?

कवि— कोई मुजायका नही । अगर माइथौलौजिकल फिल्म है तो मदिर की आरतीके बाद भक्त-जन यह थीम सौंग गाते है ।

सेठ— मैं कहता हूँ फिजूलकी बात मत करो । माइथौलौजिकल फिल्मसे मेरी बिलविड को सख़्त नफरत है ।

कवि— ओ ! आइ एम सौरी ! क्षमा कीजिए । आइ मीन—माफ फरमाइए । हाँ, अगर सोशल फिल्म हे तो—

सेठ— तो ?

कवि— तो भी कोई परवाह नही । अगर सोशल फिल्म है तो सिनेमा हाल पर टिकटोके लिए दस आने वाली लाइनसे यह कोरस गवा दीजिए ।

सेठ— फायदा !

कवि— फायदा यह कि शुरूमें थीम सौंगको इन्ट्रोडयूस करानेकी जो बात है वह पूरी हो जायगी ।

सेठ— लेकिन अगर कोई पूछेगा कि इनसे थीम सौंग क्यों गवाया, तो क्या जवाब दूँगा !

कवि— बहुत सीधा जवाब है ।

सेठ— क्या जवाब है ?

कवि— यही कि अगर इनसे न गवाता तो किनसे गवाता । बोलिए, इसके बाद कोई कुछ कह पायेगा. सिवाय मेरे ?

सेठ— तुम भी क्या कह सकते हो ?

कवि— मैं तो खैर बहुत कुछ कह सकता हूँ ।

सेठ— मसलन !

कवि— मसलन यह कि अनाथालयके बच्चोसे गवाया होता ।

सेठ— [उछलकर] वाह, वाह, शाबाश ! यह है आइडिया । वाकई यह तो गजबका थीम सौंग है ।—और तीसरी बार गवानेके लिए क्या करेंगे जानते हो ?

कवि— जी, आप जना दीजिए ।

सेठ— मैं कहता हूँ तीसरी बारके लिए हिरोइनसे गवा देंगे ।

कवि— पर यह फिट कैसे होगा ? यह तो 'धरती की पुकार' है न ?

सेठ— तभी तो कहता हूँ तुम बुद्धू हो अरे, इतना भी नहीं जानते ? हिरोइनका नाम 'धरती' रख देंगे । बस । पिक्चर कम्प्लीट । वाह वाह, भई, क्या थीम सौंग लिखा है तुमने, मान गये ।

कवि— थैन्क्यू थैन्क्यू । मैं जानता था कि आप इसे पसन्द करेंगे । शुक्रिया !—तो फिर दूसरा गाना .

सेठ— दूसरा गाना मैंने कहा था न फिमेल सोलो होना चाहिए हिरोइन के वास्ते ?

कवि— भला मैं भूल सकता हूँ । लीजिए वह भी हाजिर है ।

सेठ— ज़रा रुक जाओ। . अरे देखो ! ज़रा मिस जुहीको तो बुलाओ। तुम्हे मालूम है, मैं मिस जुहीको इस फिल्ममे लीडिग रोल दे रहा हूँ।

कवि— वाह, तब तो बडा मजा आएगा।

जुही— [आते हुए] कहिए सेठ। क्या बात है ?

सेठ— कुछ नही, कुछ नही। जरा दो मिनटका काम है। प्रोडक्शन न० २३ जिसमे तुम हिरोइनका काम करोगी, उसका यह एक गाना लिखकर लाये है। ज़रा तुम भी सुन लो।

जुही— ये ?

कवि— जी हाँ ! खाकसारने ही लिखा है। तो हाजिर है

[गीत]

तुम सपनो में आए क्यो
आँखों में समाये क्यो
बोलो, पिया बोलो

मुझे प्रीति का ज्ञान न था
मनमें कुछ अरमान न था
तुमने नयन मिलाये क्यो
जी के तार बजाये क्यो
बोलो, पिया बोलो

मुझे धूप का सोच न था
जलनेका सकोच न था
बादल बनकर छाए क्यो
रस के कण बरसाये क्यो
बोलो, पिया बोलो

फूल रही थी फुलवारी
मैं थी धुन में मतवारी
फूल देख मुसकाये क्यों
तुमने हाथ बढ़ाये क्यो
बोलो, पिया बोलो

सेठ— कहो डार्लिन्ग, कैसा लगा ?

जुही— सिली ..—नौन्सेन्स—मैं कहती हूँ, ये भी कोई गीत है, जिसका सिर न पैर !

कवि— जी नही, यह तो आप गलत फरमाती है, क्योकि इसका सिर भी है और पैर भी । देखिए न, पहली लाइन सिर है . और यह आखिरी लाइन पैर . और ..

जुही— बकवास मत करो । तुम हमारा मजाक उडाते हो ? हम यह गाना नही गाएगी ।

सेठ— लेकिन डार्लिन्ग आखिर वजह भी तो बताओ । तुम चाहो तो इसमे कुछ रद्दोबदल कर दिया जाय ।

जुही— रद्दोबदलसे काम नही चलेगा । देखिए न ! इसमे थ्रू आउट एक ऐसी टोन है, मानो मैं भीख माँग रही हूँ । बडा इन्फीरियोरिटी कप्लैक्स है इस गानेमे ।

सेठ— लेकिन, यह बात तो सिचुएशन पर डिपेन्ड करती है । अगर इस गानेकी टोन इस तरहकी है, तो हम कहानीमे भी ऐसी सिचुएशन लाएँगे कि यह फिट हो जाय ।

जुही— कैसी सिचुएशन ?

सेठ— यही कि मान लो आई मीन जस्ट सपोज.. कि हिरोइन जो है वह विधवा माँकी गरीब लडकी है । और उसे हाल ही मे एक मिडिल स्कूलमे नौकरी मिली है । तब तो ठीक रहेगा ।

जुही— और यह गाना विधवा मा गाती है ?

सेठ— ह्वाट ! ओह डार्लिन्ग, तुम समझती क्यो नही !

जुही— मैं बताऊँ ?

सेठ— कहो ।

कवि— हीरोको बुलाइए, वही इन्हे समझा सकता है ।

जुही— नौन्सेन्स ! सेठ जी, इनसे कहिए, अपनी जुबानपर जरा लगाम रक्खे । मैं इस तरहका मजाक बिलकुल पसन्द नही करती ।

कवि— तो किस तरह का करती हैं, यह मालूम हो जाय तो

जुही— शट अप !

सेठ— मैं कहता हूँ, यह क्या गडबडघोटाला है ? ए पोएट, जरा तमीजसे पेश आओ । डार्लिङ्ग । तुम भी जरा एकबार फिर सोचो . मुझे तो यह गीत अच्छा लगा । इसकी ट्यून बडी पौपुलर होगी । आखिर और कोई वजह ?

जुही— जो सिचुएशन आप बता रहे है, वह सिचुएशन भी मुझे पसन्द नही ।

कवि— अगर इजाजत हो तो मैं कुछ अर्ज करूँ ?

सेठ— हाँ, हाँ,

कवि— इसके लिए आइडियल सिचुएशन तो यह रहेगी कि यह गीत हिरोइनकी बजाय हीरो ही गा दे ।

सेठ— कमालकी बात करते हो । अरे ये फिमेल सोलो है या मेलसोलो ?

कवि— जी, बात यह है कि यह तो सोलो है । अब जरूरतके मुताबिक यह फिमेल सोलो भी बन सकता है, और मेल सोलो भी । वैसे, फिमेल सोलो ज्यादा जँचता, पर जब इनकी मर्जी नही, तो मेल सोलो ही सही ।

सेठ— यह सही की भी खूब रही । भले आदमी, गीतकी पहली लाइन है, 'तुम सपनोमे आये क्यो ।' इसका मेल सोलो कैसे बनेगा ? और अगर इसे यो करदे 'तुम सपनोमे आई क्यो'—तो बाकी सारी लाइने बदलनी पडेगी ।

कवि— जी नही कुछ नही बदलना पडेगा । ऐसा का ऐसा ही मेल सोलो हो जायगा । कवितामे इस तरह भी चल जाता है । और दो-एक फिल्ममे भी ऐसा गीत गाया जा चुका है ।

सेठ— गाया जा चुका है ? तब तो यह पुरानी ट्रिक हो गई। मैंने तुमको कहा था न, मैं सारी चीजे एकदम नई चाहता हूँ।

कवि— जी नही, गीत तो एकदम नया है, रातको ही लिखा है मैंने। लेकिन हाँ, कहनेका ढग पुराना है। और यह निहायत जरूरी चीज है। क्योकि अगर कुछ भी पुराना न रहे, तो जो आपके पुराने देखनेवाले है, उनके टेस्टका क्या होगा ?

सेठ— हाँ, यह तुम ठीक कहते हो।—तो डार्लिन्ग। अब तो कोई औब्जैक्शन नही ?

कवि— जब यह मेल सोलो है तो मुझसे पूछनेकी क्या जरूरत, हीरोको बुलाइए।

सेठ— लेकिन हीरो तो अभी प्रोड्क्शनड न० १८ मे बिजी है।—यह तो बडी मुश्किल है। अब क्या होगा।

कवि— यह तो

सेठ— डार्लिन्ग। मैं तो कहता हूँ, तुम एकबार और सोचकर देख लो। मेरी रायमे तो यह गीत बहुत ही खूब है।

जुही— जी नही, रहने भी दीजिए। हर लाइन मे क्यो, क्यो, क्यो, सवालो के मारे नाकमे दम — मानो एक्जामिनेशन हालका गीत हो—नही सेठ जी, मैं यह गाना नही गा सकती।

कवि— देवी जी, क्यो मेरा नुकसान करनेपर तुली है। जैसे-तैसे तो एक गीत सेठजीको पसन्द आया है। और कुछ नही तो मेरे लिए ही मजूर कर लीजिए।

जुही— नो, नो, नो, जो चीज मुझे पसन्द नही वह मै हरगिज पसन्द नही कर सकती। मैं यह गाना नही गाऊँगी।

कवि— लेकिन आपको थोडे ही गाना होगा। गाना तो प्लेबैक सिगर गाएगी। आप सिर्फ ..

जुही— ओह ! यू नौन्सेन्स। सेठ जी। मैं अपनी तौहीन बिलकुल

बर्दाश्त नही कर सकती । आई कैन नौट स्टैंड इट । आई एम गोइग ! [गई]

सेठ— सुनो तो डार्लिन्ग, सुनो तो ! भई, मैं कहता हूँ, यह तुम कर क्या रहे हो । गीत लिखते हो, या मेरी फिल्म चौपट करनेपर तुले हो । अब दो दिन मिस जुहीका मुँह टेढा रहेगा ।

कवि— इसमे मेरा कोई कुसूर नही—

सेठ— सरासर तुम्हारा कुसूर है, तुम्होने तो

कवि— जी नही, मै चाहे कुछ कहता या न कहता, मिस जुहीको नाराज होना था सो वह हो गईं ।

सेठ— वजह !

कवि— मेरा अन्दाज है उनको कोई दूसरा ओफर मिला है ।

सेठ— यह बात है ? तो क्या तुम समझते हो मै ऐसी छोकरियोकी परवाह करता हूँ । एक मिस जुही जायगी, पचास आयँगी .

कवि— लेकिन मेरा गीत तो सोलो है । वो नीड ओन्ली वन, हमे तो सिर्फ एककी जरूरत है ।

सेठ— अरे ! वह तो चुटकी बजाते मिल जायेगी । हाँ तो यह गीत, एकदम फर्स्टरेट । पास ! अब वह डुएट । यानी डुएट की बात आप एकदम भूल गये ?

कवि— जी नही, डुएट तो बल्कि मैंने इससे भी पहले लिखा था । वह तो मै फिलमके आर्डरसे ही गीत सुना रहा था । लीजिए, डुएट सुनिए । वह चीज लिखी है कि हिन्दुस्तानको सरपर उठा लेगी ।

सेठ— सुनाओ अरे हलो मि० नाथ । क्या शूटिग खत्म हो गई ?

नाथ— जी नही, खत्म क्या शुरू भी नही हुई । जिस पुलपर खडे होकर मुझे खुदकुशीके लिए कूदना था, वह पुल ही टूट गया, अभी रिपेयर हो रहा है ।

सेठ— कोई परवाह नही, तब तक तुम यह डुएट सुनो जरा ।' प्रोडक्शन न० २३का है जिसमे तुम्हे हीरो बनना है । हाँ भई, हो जाय ।

कवि— अभी लीजिए ..

[युगल गान]

हिरोइन—उड जा ओ मेरी कोयल ! तू दूर कही जा
साजन की खबर ला

हीरो— उड़ जा ओ मेरे भौंरे ! तू दूर कही जा
सजनी की खबर ला ।

हिरोइन—बेदरदी से जा कहना, क्या हमने बिगाडा है ।
दिल लेके जो हमारा, दो टूक यो फाड़ा है ।
कहना कि यह तो कह दो क्या हैं मेरी खता
साजन की खबर ला

हीरो— प्यारी से जा कहना, मजबूर हुए है हम
दिल चूर हुआ जब से यो दूर हुए है हम
उम्मीद के सहारे कब तक जियें बता
सजनी की खबर ला

सेठ— वाह, वाह ! क्या कोयल उडाई है, क्या भौरा छोडा है !—मान गये दोस्त, तुम सचमुच पोएट हो ।

कवि— थैन्क्यू, थैन्क्यू—

नाथ— लेकिन सेठ जी । आई एम सौरी, मेरा मतलब है आइ बेग टु डिफर यानी मैं इसको निहायत ल्हीचड और दो कौडीका गाना मानता हूँ ।

कवि— क्या तीन कौडीका भी नही ?

नाथ— यू मिस्टर पोएट ! मेरे मुँह मत लगना, समझे ! तुम्हे मालूम है मैंने प्रोडक्शन न० १८में विलेन की कैसी दुर्गति की है ?

कवि— मैंने कहा श्रीमान् जी ! जरा होशकी दवा कीजिए । वह दुर्गति तो फोटोग्राफरने की है । आपका उसमें क्या कमाल है ?

सेठ— मै कहता हूँ, तुम्हारी यह क्या आदत है कि असली बात छोडकर साइड लाइन्स मे उलझ जाते हो। [**खाँसकर**] हाँ, मिस्टर नाथ ! क्या मैं आपका ऑब्जेक्शन जान सकता हूँ ?

कवि— देखिए सेठ जी, फिल्मोके मामलेमे पब्लिकका टेस्ट बडी तेजीसे रीयलिज्म की ओर जा रहा है। और यह गीत रीयलिज्मके खिलाफ है।

कवि— किस तरह ?

नाथ— इस तरह, कि खबर लाने-ले जानेके तार, चिट्ठी, टेलीफोन, रेडियो जैसे तरीके मौजूद होने पर भी बेचारी कोयल और भौरेको जोतना अगेन्स्ट ऑल इन्टेलैक्चुअल डीसैन्सी यानी दिमागी शराफतके खिलाफ है।

कवि— वही बात हुई न कि वही बात। अरे साहब, कुछ मौकेपर भी तो गौर फरमाया होता।

नाथ— यानी इस गीतका कोई मौका भी है !

कवि— नही तो बेमौके गीत क्या कभी अच्छा लगता है !

नाथ— तो वह मौका भी सुना डालिए।

कवि— जी, वह मौका यह है कि हिरोइन तो ससुरालमे है, और हीरो

सेठ— और हीरो

कवि— हीरो जेलमे।

नाथ— जेलमे ! एब्सर्ड !! मैं जेलमे क्यो ?

कवि— अरे साहब ! सचमुचकी जेलमे नही, फिल्मी जेलमे।

नाथ— जी नही, जेल कैसी भी हो, आखिर जेल है और मुझे जेलसे सख्त नफरत है। इसीलिए मैंने अपना पोलिटिकल कैरियर छोडा। सेठ जी, यह गीत बदलवा दे।

सेठ— हद हो गई मिस्टर नाथ ! इस तरहसे तो मेरा सारा कारबार चौपट हो जायगा। हिरोइनको फिमेल सोलो पसन्द नही, आपको डुएट पसन्द नही, आखिर फिल्ममे गीत होगे भी या नही ?

नाथ— मै तो सोचता हूँ, विना गीतोके ही फिल्म बन सकती है ।

सेठ— आपको हुआ क्या है ? भला विना गीतोके स्टोरी कहाँसे आएगी, और विना स्टोरीके फिल्म कैसे बनेगी ?

कवि— यही तो यह नही समझते । गीतोपर ही तो सारा महल खडा होता है । यानी यो समझिए कि गीत एक तरहसे वे दरवाजे है जिनमे होकर स्टोरी फिल्मके अन्दर आती है । इसीलिए तो गीतोपर इतना जोर है, और इसीलिए गीतोकी इतनी तलाश है ।

नाथ— तो आप करते रहिए तलाश । मेरे पास वक्त नही, मै चला ।

सेठ— अरे ! सुनिए तो मि० नाथ ! मि० लो यह भी गये । लेकिन भई, मि० नाथ एक बात पते की कह गये । पब्लिकका टेस्ट तो जरूर बदल रहा है । इधर कई पिक्चर फ्लॉप हो चुकी है । मै तो सोचता हूँ तुम अपने गीतोमे थोडा-सा रियलिज्म लगा लो, तो अच्छा ही रहेगा ।

कवि— लेकिन यह कैसे हो सकता है ?

सेठ— क्यो नही हो सकता ?

कवि— इसलिए कि रियल्टी और गीतका मेल जरा मुश्किल है । आप ही बताइए आपने रीयल लाइफमे किसीको गाते देखा है ? सो भी डुएट और कोरस ।

सेठ— क्यो, तमाम लोग गाते है ।

कवि— जैसे ?

सेठ— जैसे ? जैसे मेरा धोबी ही गाता है ।

कवि— तो फिर कहिए तो फिल्ममे एक धोबियोका गीत भी रख दूँ ?

सेठ— लेकिन यह तो बहुत पहले एक फिल्ममे आ चुका है ।

कवि— अच्छा, मान लीजिए म्यूजिक स्कूलमे गीतकी रिहर्सल दिखायी जाय ?

सेठ— कई बार हो चुका है ।

कवि— यूनिवर्सिटीके जलसेमे कोरस ?

सेठ— पिट चुका है ।

कवि—चैरिटी शोमें डान्स ?

सेठ— यह भी हो चुका है ।

नाथ—अच्छा, शादीमें औरतोंका गीत ?

सेठ— बहुत पुराना ख्याल है ।

कवि—ऊँटोंका काफिला गाता हुआ जा रहा है ।

सेठ— लेकिन मैं कहानी हिन्दुस्तानकी चाहता हूँ ।

कवि—मकान बनाते हुए मजदूर गा रहे हैं ।

सेठ— बहुत बार गा चुके हैं ।

कवि—तो फिर आप ही बताइए, मैं कहाँसे गीत लाऊँ ?

सेठ— कोई नई बात सोचो ।

कवि— नई बात तो मि० नाथ बता रहे थे, आपको जँची ही नहीं ।

सेठ— क्या ?

कवि— यही कि बिना गीतों के ही फिल्म बन सकती है ।

सेठ— वाह । ऐसा कभी हुआ है आज तक ?

कवि—इसीलिए तो नयी बात है ।

सेठ— बेकारकी बातें मत करो । तुम्हें मालूम है, मैंने मिस फातिमा को पाँच साल का कन्ट्रेक्ट दिया है, प्ले बैक का । फिल्म में गीत न हुए तो उसका क्या होगा ?

कवि—सो तो मेरा भी क्या होगा ?

सेठ— बिलकुल ठीक ।

कवि—तो फिर ?

सेठ— तो फिर क्या । कोई नया, फडफडाता हुआ रियलिस्टिक गीत लिखो ।

कवि— यही तो उलझन है । आजकी लाइफ में रियल्टी और गीत दोनों एक साथ नहीं मिलते ।

सेठ— ज़रा मिहनत करो, ज़रा तलाश करो । खोजने से सब मिलता है । ऐसा गीत भी मिलेगा ।

कवि— यानी अब गीत लिखने की बजाय गीत की खोज करूँ ?

सेठ— हर्ज क्या है !

कवि— यानी गीत की खोज गीत की खोज ! —वो मारा !

सेठ— क्या हुआ ?

कवि— गीत मिल गया सेठ ! जैसा गीत चाहते थे, बिलकुल वैसा ही गीत का गीत और रियल्टी की रियल्टी । लीजिए सुनिए

[सहगान]

जीवन की राह में गीत कहाँ है !
गीत कहाँ है !
आओ मन ! वहाँ चलें गीत जहाँ है !
गीत जहाँ है !

गीत नहीं है तो फिर जिन्दगी है सूनी
दर्द की अँधेरी यह रात हुई दूनी
चुप न रहो, बात करो
रात को प्रभात करो
गीत भी मिलेगा वहीं प्रीत जहाँ है !
प्रीत जहाँ है !

[स्वरान्त]

इन्ट्रोडक्शन नाइट

पात्र:

प्रकाश

गोविन्द

धीरेन्द्र

वार्डन

रमेश

भोला

रामचन्द्र

वर्मा

जगदीश

अवधि:

३० मिनट

इन्ट्रोडक्शन नाइट

प्रकाश— [कविता पढते हुए]

हम कालेज वाले है
हम कालेज वाले है
कदम-कदम पर बिछे हमारे गडबडझाले हैं
हम कालेज वाले हैं
हम बेकारी के डर से घर से पढने आते हैं
फिर पढने के डर से हम हरदम सूखे जाते हैं
दिल में छाले हाय ! हमारे मुँह पर ताले हैं
हम कालेज वाले हैं

वोम्मारा ! यह लो यार ! तुम भी क्या कहोगे ! वह चीज लिखी है कि मजा आ जायगा ।

धीरेन्द्र— छोडो भी प्रकाश ! क्या खाक मजा आएगा ।

प्रकाश— क्यो, क्या कविता नही जमी ?

धीरेन्द्र— अरे कविता नही, इन फर्स्ट इयर वालोने सारा प्लान ही चौपट कर दिया । पता नही इट्रोडक्शन नाइट होगी भी या नही ।

प्रकाश— क्या मतलब ! अभी सुबह तो तुम कह रहे थे कि

धीरेन्द्र— हाँ, सुबह तक तो ठीक था, पर इसी बीच इन लोगोने सब गुड-गोबर कर दिया ।

प्रकाश— कैसा गुड, और कैसा गोबर ! तुम्हारी यह क्या आदत है धीरेन्द्र ! एक बार मे पूरी बात क्यो नही बता देते ?

धीरेन्द्र—सच पूछो, तो बतानेको जी नही करता । मेरा तो जी ऐसा जल रहा है कि बस ! पता नही इस साल कैसे काम चलेगा । ऐसे डरपोक लोग तो मैने कभी नही देखे ।

प्रकाश— आखिर कुछ कहोगे भी, हुआ क्या ?

धीरेन्द्र—हुआ यह कि आठ-दस फर्स्ट इयरके लडके वार्डन साहबके पास गये और खूब रोये-धोये । कहने लगे "हमने सुना है कि यहाँ की इट्रोडक्शन नाइटमे बडी ऊधमवाजी होती है । दूर-दूर तक हॉस्टलकी बदनामी है । ट्रेनमे भी कई लोगोने हमे आगाह किया कि अभी मत जाओ, इट्रोडक्शन नाइटके वाद जाना ।"

प्रकाश— फिर ?

धीरेन्द्र— फिर क्या ? वार्डन साहबने कहा कि अगर तुमलोगोकी राय नही है तो इट्रोडक्शन नाइट नही होगी ।

प्रकाश— इट्रोक्डशन नाइट नही होगी ?

धीरेन्द्र— नही ।

प्रकाश— जरा फिर तो कहना । तुम्हारा मतलब है इट्रोडक्शन नाइट नही ेगी ।

धीरेन्द्र—हॉ, हाँ, भई ! नही होगी ।

प्रकाश—मैं कहता हूँ धीरेन्द्र, पहले ऐसा कभी हुआ है ?

धीरेन्द्र—कभी नही ।

प्रकाश—तो फिर इस बार कैसे हो सकता है ? जरा सोचो, जरा समझो ।

धीरेन्द्र—मेरा तो दिमाग ही काम नही करता ।

प्रकाश—खैर, जहॉ तक तुम्हारे दिमागका सवाल है इसमे ताज्जुबकी कोई बात नही है । पर मेरी इस कविताका क्या होगा ?

धीरेन्द्र— और भी तो सैकडो कविताएँ लिखी हैं तुमने, उन्ही क्या हुआ है ?

प्रकाश— वे तो मैंने अपने मनसे लिखी है ।

धीरेन्द्र— और इसको लिखते समय क्या हुजूरका मन कही टहल गया था ?

गोविन्द—[आते हुए] मैं कहता हूँ धीरेन्द्र ! क्या अव भी हाथपर हाथ धरे बैठे रहोगे ?

धीरेन्द्र— जी नही, लीजिए खडा हो जाता हूँ ।

गोविन्द—लेकिन खडे होनेसे भी काम नही चलेगा ।

धीरेन्द्र— तो फिर आज्ञा दीजिए, क्या करना होगा ।

गोविन्द—कोई तरकीब निकालनी चाहिए । भला जब हम फर्स्ट इयरमे थे तब भी तो यही वार्डन थे । तब अगर इट्रोडक्शन नाइट बन्द नही हुई तो अब क्यो होगी ?

प्रकाश— जी हाँ । यह एक ही रही कि जव हमारा नम्बर आया थोडा मजा लूटनेका, तो डिव्वा ही गोल । रुकवानी ही थी तो पारसाल रुकवाते ।

धीरेन्द्र—अरे साहव, मै अपने दिलको कैसे समझाऊँ ! मै तो तीन साल फर्स्ट इयरमे रहा । और हर साल इट्रोडक्शन नाइटमे शामिल होना पडा ।

गोविन्द—मै पूछता हूँ इट्रोडक्शन नाइटमे होता ही क्या है जो ये लोग घवरा उठे । थोडी देरका शगल है, जरा तबीयत बहल जाती है ।

धीरेन्द्र— डरपोक है, और क्या कहूँ ।

प्रकाश— वीर राजपूतोकी सतान होकर इट्रोडक्शन नाइटसे डरना । छि ।

गोविन्द—शेमफुल ।

धीरेन्द्र— स्पोर्ट्समैनशिप तो अब रह ही नही गयी ।

प्रकाश— डू दे डिजर्व टु वी इन ए कालेज ? इन लोगोको वैरग वापस कर देना चाहिए ।

गोविन्द—और वार्डन साहवने भी कमाल किया जो इन लोगोकी बात मान ली । आफ्टर आल, ही हैज बीन ए स्टूडैन्ट हिमसैल्फ । उनको हम लोगोकी फीलिगका ख्याल नही आया ?

धीरेन्द्र— वेशक ! इट्रोडक्शन नाइट इज अवर बर्थराइट ।

प्रकाश— मै तो कहता हूँ, इट्रोडक्शन नाइटको कोर्समे शामिल कर देना चाहिए । तव देखे, ये लोग कहाँ जाते है ।

धीरेन्द्र— नही यार । कोर्समे नही । नही तो उसमे भी प्रोफेसरान दखल देने लग जायेगे ।

गोविन्द—यह तो ठीक है। पर अब हो क्या ? क्या हम लोग चुप होकर बैठ जायँ ?

प्रकाश—हाँ, हाँ, बताओ धीरेन्द्र। क्या मैं अपनी कविता फाड़कर फेंक दूँ !

धीरेन्द्र— कुछ न कुछ तो करना ही पडेगा। पर समझमे नही आता क्या करे। तुम्ही कुछ बताओ गोविन्द।

गोविन्द—एक काम हो सकता है। क्यो न हम लोग भी चलकर वार्डन साहबसे बाते करे ? शायद मान जाये !

प्रकाश—हाँ, यह ठीक है।

धीरेन्द्र—चलो।

[**क्षणिक विराम**]

वार्डन— [**क्रमोदय**] भई इस बहसमे क्या रक्खा है ? मैं मानता हूँ कि जीवनमे आनन्द और मनोविनोद आवश्यक है। मैं यह भी मानता हूँ कि इट्रोडक्शन नाइटके जरिये आसानीसे नये लोग हॉस्टलके जीवनमे घुल-मिल जाते हैं। पर इतना आपको भी मानना पडेगा कि कभी-कभी इट्रोडक्शन नाइटमे इतनी बेहूदगी और अशिष्टता हो जाती है कि मेलके बजाय लोगोके दिलोमें गहरे घाव हो जाते हैं। और फिर इन्स्टीटयूशनकी बदनामी होती है वह अलग !

धीरेन्द्र—लेकिन वार्डन साहब, हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि इस बार ऐसा कुछ नही होने पायेगा।

प्रकाश—और फिर फर्स्ट-इयरके दो चार डरपोक लोगोके कहनेसे क्या हम अपनी ट्रैडीशन्स छोड देगे ?

वार्डन— हाँ, यह पहलू भी है। अच्छी बात है। मै सोच-विचार कर शाम तक आपको बताऊँगा।

गोविन्द—हमारी रिक्वेस्ट है कि

वार्डन— ठीक है। आइ शैल थिन्क ओवर इट।

[**बाहर कुछ लोगोकी आहट। वार्डन साहब घन्टी बजाते हैं। भोला नौकर आता है**]

वार्डन— क्या बात है भोला ?

भोला— जी, कुछ फर्स्ट इयरके लडके आपसे मिलना चाहते हैं ।

वार्डन— उफ, अब आप ही बताइए, मैं क्या कर सकता हूँ ? वे लोग तुले हुए हैं कि इट्रोडक्शन नाइट न हो । आइए, देखे क्या कहते हैं ।

[सब लोग बाहर निकलकर आते हैं]

वार्डन— [झुँझलाकर] कहिए, आप लोग क्या चाहते हैं ?

रमेश— सर, हम लोग इट्रोडक्शन नाइटके बारेमे

वार्डन— मैं सुन चुका हूँ । आखिर बार-बार मेरा वक्त खराब करनेकी क्या ज़रूरत है । आइ नो, यू डू नौट वान्ट इट । लेकिन मुझे तो सारे पहलुओ पर ध्यान देना होगा ।

रमेश— सर, बात यह है

वार्डन— आप सोचते हैं मैं समझता नही, क्या बात है । आई हैव बीन ए फर्स्ट इयर स्टूडेन्ट माइसैल्फ । आप लोगोकी मनकी हालत मैं जानता हूँ । लेकिन इट्रोडक्शन नाइटमे सब खराबी ही हो, ऐसा नही है । इट फुलफिल्स एन इम्पोर्टैन्ट आब्जैक्ट । इस-लिए

रमेश— लेकिन सर, हम लोग

वार्डन— आप लोगोकी बात मैं सुन चुका हूँ, एण्ड आइ टैल यू, आइ सी योर पौइन्ट । बट दीज़ जैन्टिलमैन हीयर

रमेश— सर, एलाउ अस ए मिनिट । हम लोगोकी प्रार्थना है

गोविन्द—भई, आप बार-बार वही एक बात दुहराते हैं । वार्डन साहबने कह तो दिया कि आप लोगोकी बात वे सुन चुके । अब वे जो फैसला करे आपको मानना होगा ।

रमेश— माननेको हम तैयार हैं । पर हमारा निवेदन यही था कि

वार्डन—ठीक है । पर आप लोग यह भी तो जरा सोचकर देखिए कि इट्रोडक्शन नाइट यहाँ सदियोसे मनती आई है । कभी किसी

वैचर्न्स ऐसी बात नही कही जो इसबार आपलोगोने उठाई है। मैं आप सब लोगोमे हेलमेल और सद्भाव बनाये रखना चाहता हूँ। ऐट द सेम टाइम, मुझे ट्रैडीशन्सका भी ख़याल रखना है . .

प्रकाश— हीयर ! हीयर !

रमेश— लेकिन सर !

वार्डन— चुप रहिए। मैं कहता हूँ ..

रमेश— पर वार्डन साहब !

वार्डन— व्हाट इम्पर्टीनैन्स ! आप चुप नही रह सकते ?

रमेश— सर, हम लोग यह चाहते हैं .

वार्डन— चुप रहिए, मैं कहता हूँ .

रमेश— जी, नही, हमे माफ करे पर अब हम चुप नही रह सकते !

वार्डन— क्या ?

लड़के— जी हाँ, एक मिनट हमारी भी सुन लीजिए।

वार्डन— अच्छी बात है। कहिए, आप लोग क्या कहते है ?

रमेश— हम लोग चाहते है कि इट्रोडक्शन नाइट जरूर हो। पर इतनी प्रार्थना है कि उसमे कोई भी इन्डीसेन्ट बात न हो !

वार्डन— दैट्स इट ! यही तो मैं कहता हूँ ?

रमेश— हम लोग भी यह कहने आये थे। पर आपने कहने ही न दिया।

वार्डन— सौरी ! और सबेरे जो लोग मेरे पास आये थे वे ? क्या वे भी राजी है ?

रमेश— वे लोग डरपोक है, सर ! उन्होने हम सब लोगोके सरको नीचा किया है। हम लोग उनकी बात नही मानते।

वार्डन— दैट्स वैरी गुड ! तो फिर ठीक है। मेरा फैसला है कि इट्रोडक्शन नाइट जरूर हो, और आज ही हो। पर मैं यह नही चाहता कि उसमे किसी तरहकी ख़राबी हो। इसलिए मैं स्वय उसमे उपस्थित रहूँगा।

लड़के— हीयर ! हीयर !

वार्डन— और, उसकी प्रोसीडिंग्स उसी वक्तके लिए न छोड़कर आप पहले-से प्लान कर लीजिए। फर्स्ट इयरके किसी एक सज्जनको यह भार दीजिए कि अपने क्लासके सब लोगोका परिचय कराये। इसी तरह पुराने स्टूडेन्ट्सका परिचय कोई एक साहब दे दे। उसके बाद दो-चार अच्छे-अच्छे आइटम्स और बस! मिस्टर रमेश, और मिस्टर गोविन्द! आप दोनो मिलकर आइटम्स ठीक कर लीजिए, और मुझे दिखा लीजिए।

रमेश— थैन्क्यू सर!

सब— थ्री चियर्स फौर वार्डन साहब! हिप, हिप, हुर्रे!

[लड़को की भीड शोर करती हुई निकल जाती है, 'आवर वार्डन इज वैरी सेन्सीबिल', 'इट्रोडक्शन नाइट जरूर होगी', 'डाउन विद कोवर्ड्स' आदि आवाजें]

रामचन्द्र—लो भई वर्मा, यह अच्छी नाक कटी। इट्रोडक्शन नाइट तो रुकी नही, ऊपरसे बदनामी हो गई!

वर्मा— कहते है, हम लोग डरपोक है!

जगदीश—वट आर वी? क्यो मिस्टर रामचन्द्र?

रामचन्द्र—अरे! छोडिए भी इट्रोडक्शन नाइटमे ऐसी डरनेकी क्या बात है!

वर्मा— हम लोग तो खाली अनप्लेजैन्टनेस एवाइड करना चाहते थे! नही तो मै? एक-एकको बनाकर रख दूं!

जगदीश—असलमे यह रमेश ही सब आफतकी जड है। नही तो सब चुप होकर बैठ गये थे!

रामचन्द्र—यार, मुझे एक आइडिया आया। क्यो न इस रमेशको आज बना डाला जाय? यह भी क्या याद करेगा!

वर्मा— दैट्स राइट। हम लोग खाली स्पैक्टेटर्स क्यो रहे?

जगदीश—तो फिर सोच डालो कोई तरकीब!

वर्मा— अरे ! उसमे सोचना क्या है ? यू लीव इट टू मी ! देखना बच्चूको कैसा मजा चखाता हूँ !

[क्षणिक विराम]

[शोर गुल और तालियो की आवाज]

विद्यार्थी—[अटक-अटककर] वैसे तो मेरा नाम प्रिय श्री भगवान-स्वरूप सुकुमार प्रसाद सिंह शर्मा पाण्डेय है, पर पूरा नाम लेनेमे कुछ लोगोको दिक्कत होती है इसलिए मैने स्कूलके नही, नही, कालेजके

['फर्स्ट इयर फूल' 'सैन्ड हिम बैक टु स्कूल' की आवाजें]

आयम सौरी ! माफी चाहता हूँ कालेजके रजिस्टर मे मेरा नाम पी ऐस वी ऐस पी ऐस ऐस पाण्डेय ही लिखा जाता है।

['क्या कहने है इस 'ऐस' के', 'ए लौट आव ऐसेज' की आवाजें]

और मै कामर्समे दाखिल हुआ हूँ।

गोविन्द—आपके इस लम्बे नामका रहस्य यह है कि जब कभी इनको नापा जाय तो नामके साथ नापा जाय, ताकि शारीरिक लम्बाई कम्पेन्सेट हो सके।

[सब हँसते है]

वार्डन— साइलेन्स प्लीज ! हॉ तो, इट्रोडक्शन समाप्त ! अब शो होगा। किसी तरहकी गडबडी न हो, इसलिए सारा प्रोग्राम मैने देख-सुन लिया है। आयम श्योर यू विल लाइक इट। मेरी इतनी रिक्वेस्ट है कि आप शान्तिपूर्वक बैठे रहे !

प्रकाश— क्या हँसे भी नही ?

वार्डन— नही, नही, मेरा मतलब यह नही, आप सही जगहपर जी खोलकर हँसे, चीअर-अप भी कर सकते है। पर किसी काइन्डका डिस्टर्बेन्स न करे। इफ यू बिल बी राउडी आइ विल इमीडियेटली स्टाप द शो . तो अब मै मिस्टर रमेशसे रिक्वेस्ट करता हूँ, कि वे शो आरम्भ कराये।

[तालियाँ]

रमेश— जेन्टिलमैन, आपकी तफरीहके लिए जो चीजे हम पेश करेंगे उनकी सूची यह है। एक डुयेट, एक पोयम, एक कोरस, एक छोटा-सा नाटक और एक इन्टरव्यू। प्रोग्रामका बिग-निग डुयेटसे होगा, और ऐण्ड कोरससे। डुयेट शुरू करनेसे पहले आपको यह बताना जरूरी समझता हूँ कि डुयेटके बारेमे बहुतसे लोगोकी यह धारणा है कि उसमे गानेवाले एक स्त्री और एक पुरुष होने चाहिए। मैं इस धारणाको भ्रान्त मानता हूँ। डुयेट माने दो-गाना। और कोई भी दो जने मिलकर डुयेट गा सकते हैं। इसीलिए, हमारा डुयेट, एक प्रोफेसर और एक स्टूडेण्टके बीचका दो गाना है। लीजिए डुयेट जिसका शीर्षक है 'ऐन ऐसे ऑन लव'।

[युगल गान]

प्रोफेसर—एक ऐसे तुमको लिखना था, क्यो अब तक दिया नही ?

स्टूडेण्ट—मैं लव पर ऐसे कैसे लिखूँ, मैंने लव ही किया नही।

प्रोफेसर—कुछ देखके लिखो, कुछ पढके लिखो।
कुछ-कुछ मन से गढके लिखो।

स्टूडेण्ट—बिना तजुर्बेके लिखनेका मेरा जिया नहीं।
मैं लव पर ऐसे कैसे लिखू मैंने लव ही किया नही।

प्रोफेसर—यू लव योर सेल्फ, यू लव योर नेम
यू लव योर वेल्थ, यू लव योर फेम
लव के रूप हजारो है क्यो इनको लिया नही।

स्टूडेण्ट—मैं लव पर ऐसे कैसे लिखूँ, मैंने लव ही किया नही।

[तालियाँ 'वाह-वाह' 'जियो !']

रमेश— थैन्क्यू ! थैन्क्यू जैन्टिलमैन। यह तो हुआ डुयेट। अब एक इन्टरव्यू सुनिये। यह इन्टरव्यू एक ग्रेजुएटके साथ होती है

जिसने न्यू वेराइटी शू कम्पनी लिमिटेडके सेल्समेनकी जगहके लिए एप्लाई किया है। लीजिए, हाजिर है इण्टरव्यू।

प्रश्न— आपका नाम ?

उत्तर— ब्रह्मानन्द सहोदर वर्मा।

प्रश्न— आपको अपने नामका मतलब मालूम है ?

उत्तर— जी हाँ।

प्रश्न— क्या ?

उत्तर— ब्रह्मानन्दका सगा भाई !

प्रश्न— यानी ?

उत्तर— जी, ब्रह्मानन्द मेरे बड़े भाईका नाम है !

[हँसी]

प्रश्न— हूँ। वैल, आप आजकल क्या कर रहे हैं !

उत्तर— जी, रिसर्च कर रहा हूँ !

प्रश्न— आपकी थीसिसका सब्जैक्ट क्या है ?

उत्तर— **[सोचता है]** अभी बताता हूँ। **[फिर सोचता है]**

प्रश्न— क्या मतलब ? आपको अपनी थीसिस का सब्जैक्ट तक याद नहीं ?

उत्तर— जी, बात यह है कि सब्जैक्ट जरा एब्नौर्मल है। हाँ, सुनिए मेरी थीसिसका विषय है एन एनालिटिकल स्टडी आफ द कौजेज एण्ड इफैक्ट्स ऑफ द चेन्जिग सीजन्स ऑफ इण्डिया औन द मैन्टल एण्ड फिजिकल सरकमस्टान्सैंज दैट लैड टु द डिसएपीपरैन्स आफ म्यूजिक फ्रौम आवर होम्स !

[हँसी]

प्रश्न— यह विषय आपको किस डिपार्टमैण्टसे मिला है ?

उत्तर— जियोग्राफीसे !

[हँसी]

प्रश्न— हूँ तो क्या आप यह बता सकते हैं कि इस विषयसे हमारी शू कम्पनीकी सेल्समैनशिपमें आपको क्या सुविधा होगी ?

उत्तर— बिलकुल साफ है! अपनी थीसिस पूरी करनेके लिए मुझे हिन्दुस्तान के उत्तर, दक्खिन, पूरब, पश्चिम, हर शहर, हर गाँव और हर घर मे घूमना पडा है। इस चक्करमे मुझे हजारो जूतोका इस्तैमाल करना पडा है। और मै हर जूतेकी मजबूतीसे वाकिफ हूँ!

[हँसी]

प्रश्न— अच्छा, यह बताइए, औटोबाइग्राफी किसे कहते है!

उत्तर— बिना पेट्रौलके चलने वाली गाडीको।

प्रश्न— और औटोमौबाइल?

उत्तर— एक तरहके फोडे होते है, जो अपने आप शरीरमे फूट निकलते है।

प्रश्न— पम्प शू का नाम कैसे पडा?

उत्तर— सबसे पहले इसका डिजाइन पम्प साहबने तैयार किया था।

प्रश्न— आपके ख्यालमे वारेन हेस्टिंग्स सबसे पहले कब आया?

उत्तर— आठवे दर्जे मे!

प्रश्न— पिन कौन बनाता है?

उत्तर— एक जातिकी लडकियाँ बनाती है जिन्हे पिन-अप गर्ल्स कहते है।

प्रश्न— आपने कभी ड्रिल की है?

उत्तर— जी नही, यह इंजीनियरोका काम है।

प्रश्न— हिन्दुस्तानकी आबादीके बारेमे आपका ख्याल कैसा है?

उत्तर— लय जरा द्रुत है!

प्रश्न— झूठ बोलनेको आप बीमारी मानते है, या अपराध?

उत्तर— मै तो आर्ट मानता हूँ!

प्रश्न— पानी न बरसनेसे क्या नुकसान है?

उत्तर— छातोकी बिक्री नही होती!

प्रश्न— इंग्लैण्डके किसी कविका नाम बताइए!

उत्तर— पोप!

प्रश्न— इनकी कविता कैसी है?

उत्तर— बड़ी धार्मिक होती है।

प्रश्न— किस व्यक्तिको कैसे जूते पसन्द है, यह आप कैसे पहचानेगे ?

उत्तर— उसके स्वभाव और व्यवहारसे।

प्रश्न— आप कौन-सा जूता पहनते है ?

उत्तर— जो मिल जाय।

प्रश्न— आपकी रिर्सच कब समाप्त होगी।

उत्तर— नौकरी मिलते ही।

प्रश्न— अगर आपको यह नौकरी मिल जाय, तो सबसे पहले आप क्या करेगे ?

उत्तर— शादी करूँगा।

[हँसी। तालियाँ]

रमेश— और अब सुनिए एक गजल, जो खासतौर पर इसी मौकेके लिए लिखी गई है। गजल आपकी खिदमतमे श्री गोविन्दप्रसाद सिनहा उर्फ हजरते खुशतर पेश करेगे।

['इरशाद' 'इरशाद' की आवाजें]

गोविन्द—[खाँसकर] भाइयो, जो गजल मैं पेश करूँगा, उसकी एक विशेषता यह है कि वह हिन्दीमे है। यह एक तरहका एक्स-पैरीमैण्ट है, और अगर गुस्ताखी माफ हो तो ऐसा प्रयोग हिन्दी साहित्यमे पहली बार मैंने ही किया है। इस तरहके साहित्यिक आदान-प्रदानसे हिन्दी और उर्दू एक दूसरेके समीप आयेगी, इसका मुझे यकीन है। यही नही, जरूरतके अनुसार मैंने अंग्रेजी शब्दोका प्रयोग करनेमे भी सकोच नही किया है। लीजिए मकता हाजिर है।

जो पलके भी न लगने दे उसे दीदार कहते है
जो घर-घरमें पहुँच जाए उसे उद्गार कहते है

कभी घंटा हुआ खाली, मिले, दो-चार वार्ता की
इसीको बस यहाँ कालेज वाले प्यार कहते हैं

पढ़ाई हो, न हो, हमको नही इससे कोई आशय
वे जिस दिन भी न दीखें हम उसे रविवार कहते हैं

न कुछ कहने की है दरकार, उनका नाम ही ऐसा
कि टीचर भी उपस्थिति में उन्हे सरकार कहते हैं

पढाई में नजर खोकर उन्होने मोल ली ऐनक
हमारे लोकमें इसको ही आँखें चार कहते हैं

वे जिस टाइम पै आते हैं उसी पर हम भी जाते हैं
इसे विज्ञान में बेतार वाला तार कहते हैं

न जाने किस गजब की चाल है, पकडी नही जाती
वे जिस साइकिल पै चढते हैं, उसे हम कार कहते हैं ।

[तालियोकी गड़गडाहट]

[रमेश— जैन्टिलमैन ! अभी आपने गोविन्दजीसे गजलमे एक नया प्रयोग सुना । हमे विश्वास है कि अपनी अद्वितीय प्रतिभासे वे अवश्य ही भविष्यमे एक नये वादको जन्म दे सकेंगे ! अब एक छोटा-सा नाटक सुनिये । यद्यपि इस नाटकके बारेमे पूरे विवरण मैं स्वय नही जानता, पर एक सूचनासे आपको हर्ष-भरा आश्चर्य होगा कि यह नाटक हमारे उन्ही मित्रोने तैयार किया है जिन्होने पहले इस इट्रोडक्शन नाइटको रोकनेकी प्रार्थना की थी । ['हीयर' 'हीयर'] मुझे आशा है कि उनकी इस बहादुरी और स्पोर्ट्समैनशिपके लिए भी आप मेरी ही तरह उन्हे कौन्ग्रैचूलेशन्स देना चाहेगे । ['जरूर' 'जरूर'] आइए, मिस्टर वर्मा एण्ड पार्टी, अपना आइटम शुरू कीजिए ।

[क्षणिक विराम]

वार्डन— मिस्टर वर्मा एण्ड पार्टी कहाँ गए ये लोग ?

[भीडमें हलचल। 'मिस्टर वर्मा नही है, अभी तो यही थे' की आवाजें]

रमेश— भाइयो, मालूम पडता है कि मिस्टर वर्मा एड पार्टी का साहस ऐन मौके पर जवाव दे गया। खैर, कोई वात नही। उसकी जगह पर हम एक और छोटी-सी चीज आपको दिखाते है। इस आइटम का नाम है पक्चुएशन प्लीज।

[तालियाँ]

प्रोफेसर—तुमसे कितनी वार कहा है कि विना पक्चुएशनके किसी भी लैंग्वेजकी नौलेज अधूरी है। उठते, बैठते, लिखते, बोलते, हमेशा पक्चुएशन का ध्यान रक्खा करो, समझे।

विद्यार्थी १—जी, समझ गया।

[क्षणिक विराम]

विद्यार्थी २-चलो, यार आज मैच देखकर चलेगे।

विद्यार्थी ३—नही भाई कौमा तुम्ही जाओ। फुलस्टाप। पिताजीने कहा था कौमा इन्वर्टेड कौमाज बिगिन आज जल्दी लौटना कौमा एक काम है इन्वर्टेड कौमाज क्लोज्ड इसलिये डौट डौट डौट।

विद्यार्थी १—यह क्या मजाक है ?

विद्यार्थी २—पक्चुएशन्स प्लीज ?

विद्यार्थी १—क्या मतलव ?

विद्यार्थी २—जव भी आप सवाल करे, इटैरोगेशन मार्क वोलना चाहिए। नही तो मै कैसे समझूँगा, आप सवाल कर रहे है ?

[जोरकी हँसी]

[भोला कुछ सामान लेकर आता है और जोरसे पटक देता है]

वार्डन— ऐ भोला, यह क्या गडवड है ? यह किसका सामान है ?

वर्मा— जी, यह मेरा सामान है। मैं हॉस्टलके वार्डन साहबसे मिलना चाहता हूँ।

वार्डन— फरमाइए, मैं ही वार्डन हूँ।

वर्मा— जी, बात यह है कि मेरा सुपुत्र यानी माई सन आपके यहाँ भरती हुआ है, मैं उससे मिलने आया हूँ।

वार्डन— क्या नाम है आपके बेटे का ?

वर्मा— रमेशचन्द्र कुलश्रेष्ठ।

रमेश— ह्वाट ? क्या कहा ?

वर्मा— ओ ! अरे बेटा रमेश ! यहाँ आ बेटा, मेरे कलेजे से लग जा। उफ ! तू कितना शैतान हो गया है। वार्डन साहब, यह मेरा बेटा है। इसको लाख समझाया कि अब मैं तुझे आगे नही पढा सकता। पर यह न माना। चुपचाप अपनी अम्मा के गहने लेकर चला आया। मैं तो फिक्रके मारे मरा जा रहा था। उधर इसकी मा ने रोते-रोते आँखे सुजा ली।

रमेश— बट आइ से, व्हाट इज दिस ? यू आर नौट माइ फादर ? वार्डन साहब, मैं इन्हे पहचानता तक नही।

वर्मा— अरे बेटा! क्या बुढापेमे यह भी सुनना बदा था ? जबसे रिटायर हुआ हूँ, वार्डन साहब

वार्डन— रमेश ! यह क्या बदतमीजी है ? अपने पिताके पैर पकडकर माफी माँगो।

रमेश— पर ये मेरे पिता हो तब न। आइ टैल यू सर ! ये मेरे कोई नही। भला मेरे पिता क्या ऐनक लगाते हैं ?

वर्मा— क्या ऐनक नही लगाते ? अरे ! चश्मा उतारना तो भूल ही गया ! आयम सौरी वार्डन साहब, मेक-अपमे गडबडी हो गयी।

[**हँसी और तालियोके मारे कान फटने लगते है**]

वार्डन— साइलेन्स। साइलेन्स प्लीज। भई, मान गए वर्मा तुमको। जेन्टिलमैन, अभी जो कुछ हुआ वही नाटक था जो वर्माने दिखाने

को कहा था। और हालाँ कि नाटक छोटा था, पर मैं मानता हूँ कि उसमें सस्पैन्स और सरप्राइज दोनों जबर्दस्त थे। आइ कौन्ग्रैचूलेट मिस्टर वर्मा फौर हिज डेयरिंग परफौर्मैन्स।

[तालियाँ]

वर्मा— मेरा ख्याल है कि इसके बाद न हमें डरपोक माना जायगा, और न फर्स्ट इयर फूल। क्यों मिस्टर रमेश ?

रमेश— मानता हूँ दोस्त ! तुम सबके गुरू निकले।

[हँसी]

रमेश— एन्ड नाउ फार द फाइनल आयटम। लीजिए आखिरमें एक कोरस पेश है जिसे प्रकाशचन्द्र रस्तोगीने लिखा है, और वही लीड कर रहे हैं। आशा है, आप सब साथ देंगे।

[सहगान]

हम कालेज वाले हैं
हम कालेज वाले हैं
कदम-कदम पर बिछे हमारे गड़बड़झाले हैं
हम कालेज वाले हैं

हम बेकारी के डर से घर से पढ़ने आते हैं
फिर पढनेके डरसे हम हरदम सूखे जाते हैं
दिलमें छाले हाय ! हमारे मुँह पर ताले हैं
हम कालेज वाले हैं

सरपर है पुस्तकका गट्ठर और हाथमें पैन
दिलमें इम्तहानकी दहशत रहते हैं बेचैन
हम लैक्चरके लक्ष अभावोंके हम पाले हैं
हम कालेज वाले हैं
हम कालेज वाले हैं।

[स्वरान्त]

●

ज्ञानपीठके सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

दार्शनिक, आध्यात्मिक, धार्मिक

१ भारतीय विचारधारा २)
२. अध्यात्म-पदावली ४॥)
३ कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न २)
४ वैदिक साहित्य ६)
५ जैन शासन [द्वि स] ३)

उपन्यास, कहानियाँ

६ मुक्तिदूत [उपन्यास] ५)
७. सघर्षके बाद ३)
८ गहरे पानी पैठ २॥)
९. आकाशके तारे धरतीके फूल २)
१० पहला कहानीकार २॥)
११. खेल-खिलौने २)
१२ अतीतके कपन ३)
१३ जिन खोजा तिन पाइयाँ २॥)

कविता

१४ वर्द्धमान [महाकाव्य] ६)
१५ मिलन-यामिनी ४)
१६ धूपके धान ३)
१७ मेरे बापू २॥)
१८ पचप्रदीप २)
१९ आधुनिक जैन-कवि ३॥)

संस्मरण, रेखाचित्र

२० हमारे आराध्य ३)
२१ सस्मरण ३)
२२ रेखा-चित्र ४)
२३ जैन जागरणके अग्रदूत ५)

उर्दू-शायरी

२४. शेरो-शायरी [द्वि० स०] ८)
२५ शेरो-सुखन [पाचो भाग] २०)

ऐतिहासिक

२६ खण्डहरोका वैभव ६)
२७ खोजकी पगडण्डियाँ ४)
२८ चौलुक्य कुमारपाल ४)
२९ कालिदासका भारत [दो भाग] ८)
३०. हिन्दी जैन साहित्यका स० इतिहास २॥=)
३१. हिन्दी जैनसाहित्य परिशीलन [भाग१,२] ५)

ज्योतिष

३२ भारतीय ज्योतिष ६)
३३ केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि ४)
३४ करलक्खण ॥)

विविध

३५ द्विवेदी-पत्रावली २॥)
३६ जिन्दगी मुसकराई ४)
३७ रजतरश्मि [नाटक] २॥)
३८ ध्वनि और सगीत ४)
३९ हिन्दू विवाहमे कन्यादानका स्थान १)
४० ज्ञानगगा [सूक्तियाँ] ६)
४१ रेडियो-नाट्य-शिल्प २॥)
४२ शरत्के नारीपात्र ४॥)
४३ संस्कृत साहित्यमे आयुर्वेद ३)
४४ और खाई बढती गई २॥)
४५ क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ? २॥)